

ISSN 2320-5601 Pairokar

# पैरोकार

साहित्य, शिक्षा, कला व संस्कृति की त्रैमासिकी

वर्ष : 11 • अंक : 1 • जनवरी-मार्च, 2022 • RNI-WBHIN/2012/44200



**वर्ष 11 • अंक 1 • जनवरी—मार्च 2022**  
**अंतरराष्ट्रीय पीयर रिव्यूड पत्रिका**

<b>विषय सूची</b>	
<b>संपादकीय</b>	<b>2</b>
— <b>अनवर हुसैन</b>	
सामाजिक विषमताओं के संदर्भ में राजेश की कतिवताएँ	<b>3</b>
— <b>डॉ. मकेश्वर रजक</b>	
भारतीय नारी विमर्श की आधार शीला : सावित्री बाई फुले और ताराबाई शिंदे	<b>12</b>
— <b>डॉ. रणवीर समुद्रे भगवान</b>	
साहित्य में स्त्री—विमर्श की भूमिका	<b>17</b>
— <b>कुमारी भारती</b>	
भक्तिकाल की आधुनिक लोक जागरण की प्रसंगिकता	<b>20</b>
— <b>डॉ. चंदन कुमार</b>	
सिनेमा और समाज : अंतर्सम्बन्ध	<b>24</b>
— <b>डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम</b>	
बंकिमचंद्र : राष्ट्रीयता का उद्घोषक	<b>28</b>
— <b>डॉ. चक्रधर प्रधान</b>	
वर्तमान समय में तुलसी के समन्वय का महत्व	<b>32</b>
— <b>डॉ. श्रीनिवास सिंह यादव</b>	
मोहन राकेश की कहानियों में विश्लेषित नारी	<b>35</b>
— <b>रीता कुमारी</b>	
हिन्दी साहित्य में भारतेंदु युगीन महिला रचनाकारों	<b>40</b>
का अवदान — <b>डॉ. महेश सिंह</b>	
<b>कविता :</b>	<b>45</b>
सिम्बॉल ऑफ नॉलेज	
— <b>नारायण दास</b>	
क्यों बदल गए	
— <b>पिंकी सिंह</b>	
<b>गीत :</b>	<b>46</b>
सफर में साथ—साथ चल तू	
<b>रिपोर्ट :</b>	<b>47</b>
<b>संपादन और प्रबंधन के सभी पद अवैतनिक</b>	
मूल्य एक प्रति- रु. 25/- वार्षिक सहयोग राशि- रु. 400/-	
संस्थाओं के लिए : रु. 500/-, इस अंक का मूल्य रु. 50/-	

**संपादन और प्रबंधन के सभी पद अवैतनिक**

मूल्य एक प्रति- रु. 25/- वार्षिक सहयोग राशि- रु. 400/-  
 संस्थाओं के लिए : रु. 500/-, इस अंक का मूल्य रु. 50/-

किसी भी देश का सर्वांगीण विकास कुछ हद तक उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। उच्च शिक्षा में व्यवहारिक ज्ञान की जरूरत आज कुछ ज्यादा ही है। लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि विज्ञान को छोड़ कर अधिकांश शिक्षा क्षेत्रों में व्यवहारिक ज्ञान की कमी रही है। यही वजह है कि विज्ञान से इतर विषयों में पीचेड़ी करने वाले कुछ लोग बेरोजगार की श्रेणी में बने रहते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भी पीचेड़ी धारक बेरोजगार नहीं है, इसे भी सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता है। पीएचडी करने के बावजूद अगर कोई युवा बेरोजगार रह जाता है तो इसका मतलब हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था में खामियाँ हैं। पारंपरिक रूप से शिक्षा ग्रहण कर कुछ युवा जरूर प्रोफेसर और शिक्षा के क्षेत्र में अच्छे पद प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन इसमें उनकी ज्ञान कम और तोता रटंत विद्या तथा कुछ शुभचिंतकों की ही कृपा अधिक होती है। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन के लिए राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (नेट), पीएचडी और साथ ही मास्टर डिग्री में 55 प्रतिशत अंक से उत्तीर्ण होना अनिवार्य माना जाता है। इन मानदंडों को पूरा करने वाले ज्ञानी गुणी लोग व्यवहारिक ज्ञान में भी दक्ष हैं, यह जरूरी नहीं है। यही वजह है कि उनके दिशा निर्देश में पीएचडी करने वाले कुछ युवा बेरोजगार हो जाते हैं। यदि कोई उच्च पद प्राप्त कर लिया तो उसके पीछे किसी महानुभाव की विशेष कृपा ही होती है। कहने का अर्थ है यह कि एक उच्च शिक्षित युवा को अपनी योग्यता के अनुसार अच्छी नौकरी प्राप्त करना बड़ा मुश्किल है। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता आएगी तभी जाकर बड़े डिग्रीधारी सभी युवक अपनी योग्यता अनुसार करियर बनाने में सफल होंगे।

खुशी की बात है कि यूजीसी उच्च शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अब सार्थक

### अनवर हुसैन

कदम उठाने जा रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले पेशेवरों को भी अब विश्वविद्यालयों और कालेजों में पढ़ाने का मौका मिलेगा। कालेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन के लिए यूजीसी पीचेड़ी और नेट की अनिवार्यता खत्म करने जा रहा है। संचार, पत्रकारिता और वाणिज्य आदि क्षेत्रों में विशेषज्ञता हासिल करने वाले पेशेवर भी अब कालेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन कर सकेंगे। इससे शिक्षण संस्थान और उद्योगों के बीच जो गरही खाई है वह भरेगी और छात्र व्यवहारिक ज्ञान अर्जित करने में सक्षम होंगे।

यूजीसी नई शिक्षा नीति के अनुसार जो व्यापक बदलाव करने जा रहा है उसमें कालेजों और विश्वविद्यालयों में अब विभिन्न क्षेत्रों के पेशेवर विशेषज्ञों से भी छात्र व्यवहारिक शिक्षा ग्रहण करेंगे। यूजीसी के इस निर्णय के तहत इसी साल से एमफिल् की डिग्री समाप्त कर दी जाएगी। नई शिक्षा नीति के तहत चार वर्षीय स्नातक छात्र भी पीएचडी करने के याग्य माने जाएंगे। निश्चय ही उच्च शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने की दिशा में यूजीसी का यह एक सार्थक कदम है। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। छात्रों के अंदर हर क्षेत्र में व्यवहारिक ज्ञान बढ़ाने के लिए कम अवधि का कोर्स भी कराया जाना चाहिए ताकि कालेजों और विश्वविद्यालयों की डिग्री हासिल करने के बाद कोई बेरोजगार नहीं रह सके। उच्च सिक्षा का उद्देश्य तो यह होना चाहिए कि विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करने के बाद कोई भी युवा खुद रोजगार करने में सक्षम हो व औरों को भी रोजगार उपलब्ध कराने में मददगार साबित हो। ऐसा होता है तभी जाकर उच्च शिक्षा का महत्व बढ़ेगा।

आलेख

## सामाजिक विषमताओं के संदर्भ में राजेश जोशी की कविताएँ

प्रो. मकेश्वर रजक

हिन्दी विभाग

मानकर कॉलेज, मानकर,

बर्द्धमान (प. बंगाल)

**स**त्तर के दशक से लेकर अब तक जिन समकालीन कवियों की लंबी सूची रही है, उन कवियों में राजेश जोशी एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रहे हैं। दरअसल सत्तर का दशक हिन्दी कविताओं के लिए संघर्ष का काल भी रहा है क्योंकि इनके पीछे की पीढ़ी नई कविताओं से जुड़े हुये पीढ़ी है, जिनमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर, भवानी प्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, विजय नारायण साही, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि दिग्गज कवि हैं जिनके कविताओं पर प्रगतिवाद से लेकर प्रयोगवाद और नई कविता आंदोलन की कविताओं का मिला—जुला प्रभाव है, जहाँ वे मानव जीवन और समाज से संबंधित नए जीवन मूल्यों की स्थापना करते हैं। यहाँ उन्हें मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे— राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों से संघर्ष करना पड़ता है। लगभग इसी सत्तर के दशक से हिन्दी कविता के क्षेत्र में समकालीन कविताओं का दौर भी प्रारम्भ हो जाता है। इस दौर के प्रमुख प्रतिनिधि कवि विनोद कुमार शुक्ल, आलोक धन्वा, कुमार विमल, निलाभ, विरेन डबराल, मंगलेश डबराल, लीलाधर जागुड़ी, वेणु गोपाल, विजेंद्र, पंकज सिंह, ऋतु राज, प्रयाग शुक्ल, अरुण कमल आदि हैं, जिनकी कवितायें भारतीय समाज और वैश्विक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं एवं जीवन मूल्यों को नए सिरे से मूल्यांकन करती हुई 21वीं सदी में प्रवेश करती हैं। वास्तव में यह समय भारतीय समाज और संस्कृति के लिए संकट का भी समय रहा है, क्योंकि यह वही समय है जिसपर एक तरफ विश्व—व्यापी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारतीय समाज पर

दबदबा प्रभाव रहा है तो दूसरी तरफ वैश्वीकरण और अमेरिका जैसे पूँजीवादी राष्ट्रों का भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर चौतरफा आक्रमण। इस बीच भारतीय समाज पर आन्तरिक सामाजिक, धार्मिक और सांप्रदायिक आक्रमण भी हुए हैं, जो देश की एकता, अखंडता और आपसी भाई चारे स्थापित करने में बाधक सिद्ध हुए हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि इस प्रकार के घृणित कार्यों में अपने ही देश के कुछ स्वार्थी संगठन, भ्रष्ट एवं स्वार्थी राजनेता एवं विभिन्न धर्मों के ठेकेदार लिप्त हैं, जो देश की गरिमा, मर्यादा, राष्ट्रीयता, अखंडता एवं धार्मिक तथा वैचारिक सद्भावना को नष्ट किया है। राजेश जोशी और उनके पीढ़ी के कवि समाज में विष की तरह फैले इन सामाजिक और सांस्कृतिक विसंगतियों को भली—भांति देखते हैं, परखते हैं और इन विसंगतियों के विरुद्ध कलम उठाते हैं।

सामाजिकता की दृष्टिकोण से राजेश जोशी की कवितायें एक नए सोच और चिंतन का आयाम प्रस्तुत करती है। इनकी कविताओं का मूल्यांकन इस रूप में नहीं होना चाहिए कि वे कितना लिखे हैं, बल्कि इस रूप में मूल्यांकन होना चाहिए कि वे क्या लिखे हैं? और किसके लिए लिखे हैं? सुधीर रंजन के शब्दों में, “राजेश जोशी की कविताओं को पढ़ना एक पीढ़ी और उसके समय से दस—पंद्रह साल पीछे की कविता और उससे जुड़ी बहसों के बारे में सोचना और इतने साल आगे की कविता और उसकी मुश्किलों की ओर ताकना है। शायद इतना भर भी पर्याप्त

नहीं है, क्योंकि राजेश जोशी ने जब कवि—कर्म आरंभ किया और उसके तीन साल अंदर उनकी कविता को अलग पहचान मिली, उस समय तीन—चार पीढ़ियाँ और उससे कई गुण अधिक साहित्यिक—वैचारिक छवियाँ काव्य परिदृश्य में उद्घत थी। कुछ थोड़े पुराने और कुछ बिल्कुल नए कवियों के बीच, उनके थोड़ा साथ होकर और थोड़ा उनसे अलग हटकर राजेश खड़े देखे गए। कुछ नए कवि पिछले दशक की चेतना से ही आविष्ट थे, तो कुछ राजेश की पहचान के इर्द—गिर्द थे।<sup>1</sup> राजेश जोशी एक तरफ अपने पूर्ववर्ति कवियों को आदर्श मानते हैं तो दूसरी तरफ अपने बाद के पीढ़ियों के लिए एक आदर्श भी साबित होते हैं। अर्थात् वे अपनी परंपरा से प्रेरणा ग्रहण करते हुए एक नए और स्वस्थ काव्य परंपरा को स्थापित करते हैं जिनमें व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के विसंगतियों के विरुद्ध नवनिर्माण के प्रति कर्मठता और प्रतिबद्धता है।

राजेश जोशी की काव्य यात्रा सन 1972 ई० के आस—पास शुरू होता है। सन 1977 ई० में इनकी एक लंबी कविता—‘समरगाथा’ का प्रकाशन होता है जो उनके काव्य—यात्रा एवं सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रथम सौपान है। सामाजिक दृष्टिकोण से यह लंबी कविता अत्यंत महत्वपूर्ण है। कारण इस समय कविता नाना प्रकार के वैचारिक संघर्ष से गुजरते हुए एक नए स्वरूप की स्थापना की ओर अग्रसर थी। इस लंबी कविता के पुरोवचन में कवि राजेश जोशी स्वयं ही स्वीकार करते हैं—“लगभग यही समय था जब धीरे—धीरे कविताओं का मिजाज बदलना शुरू हुआ था। आठवें दशक की शुरुआत थी। मैं और मेरे कई समकालीन रचनाकार मित्र अपनी कविता के लिए अलग जमीन की तलाश कर रहे थे। आठवें दशक की कविता वस्तुतः कई एक दूसरे से विपरित काव्य—आंदोलनों की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का परिणाम है”<sup>2</sup> ‘समरगाथा’

एक लंबी कविता होते भी एक स्वतंत्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित है।

इस लंबी कविता के प्रकाशन के बाद से लेकर अबतक राजेश जोशी की कुल आठ काव्य—संकलन प्रकाशित हो चुके हैं जो कालक्रमानुसार इस प्रकार है—‘एक दिन बोलेंगे पेड़’ (1980), ‘मिट्टी का चेहरा’ (1985), ‘नेपथ्य में हँसी’ (1994), ‘गेंद निराली मिठू की’ (1989), ‘दो पंक्तियों के बीच’ (2000), ‘चाँद की वर्तनी’ (2006), ‘जिद’ (2015) और ‘उलंघन’ (2021)। ‘गेंद निराली मिठू की’ बच्चों के लिए लिखी गई एक चर्चित काव्य—संग्रह है। ‘धूप घड़ी’ उनके प्रथम काव्य—संग्रह—‘एक दिन बोलेंगे पेड़’ एवं द्वितीय काव्य—संग्रह—‘मिट्टी का चेहरा’ के दूसरे संस्करण (1989) की सम्पूर्ण कविताओं का संयुक्त संकलन है और यह संकलन सर्वप्रथम 2002 ई० में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था। इनके प्रसिद्ध काव्य—संग्रह—‘दो पंक्तियों के बीच’ पर उन्हें सन 2002 ई० में ‘साहित्य अकादमी पुरस्कार’ से सम्मानित भी किया जा चुका है। इस अवसर पर वक्तव्य देते हुए राजेश जोशी ने कहा था—“हमारी अर्थव्यवस्था में बढ़ रही अपस्फीति भूख, बेरोजगारी और हिंसा का एक ऐसा स्थान अध्याय लिख रही है, जो फासीवाद की खुराक बन रहा है। सांप्रदायिक फासीवाद हमारी देहरी लांघ चुका है। यह एक ऐसा दलाल फासीवाद है जो वित्तपूंजी के प्रपंचों से नाभिनालबद्ध है”<sup>3</sup> राजेश जोशी की ये पंक्तियाँ भारतीय समाज के सम्पूर्ण विसंगतियों की ओर संकेत करता है। इसके अतिरिक्त राजेश जोशी हिन्दी साहित्य की गद्य विधाएँ जैसे— कहानी, नाटक, आलोचना आदि क्षेत्रों में भी अपनी पहचान बना चुके हैं। उन्होंने कुछ राष्ट्रीय स्तर के पत्र—पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया है। गुजरात के सांप्रदायिक हिंसा के विरुद्ध लिखी गई टिप्पणियों के चयन—‘तीसरी आवाज’ का भी

उन्होंने सम्पादन किया है जो सांप्रदायिक और धार्मिक हिंसा के विरुद्ध सामाजिक और धार्मिक सद्भावना, आपसी भाई-चारा और जनचेतना जगाने में सार्थक सिद्ध हुआ है।

राजेश जोशी की कविताओं में सामाजिक विसंगतियों का व्यापक चित्रण हुआ है। व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, संस्कृति, मान्यताएँ, राजनीति आदि के साथ-साथ पर्यावरण एवं प्रकृति हमारे सामाजिक जीवन के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण अंग हैं जिनके चर्चा के बिना कोई भी साहित्य अधूरा लगेगा। यही कारण है कि राजेश जोशी मानव समाज के इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं को अपने सृजन के लिए औजार के रूप में उपयोग करते हैं। राजेश जोशी के सृजनशीलता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे छोटी-छोटी घटनाओं, अनुभवों और वृत्तान्तों को अपनी रचनाओं का विषय-वस्तु बनाते हैं और समाज को यह सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं कि एक छोटी सी सूई को कभी भी छोटा नहीं समझना चाहिए अर्थात् छोटी-छोटी घटनाएँ भी गम्भीर परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है और इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जायेंगे। कहना न होगा कि राजेश जोशी की कवितायें साधारण में असाधारण की खोज करती हैं। उनकी दृष्टि में कविता मनुष्यता के एक बड़े सच को व्यक्त करती है।

आधुनिक समाज की सब बड़ी समस्या है— स्त्री शोषण। साहित्य के लगभग सभी विधाओं में स्त्री-चिंतन की चर्चा जोरों पर है। स्त्री-शोषण—तंत्र के विरुद्ध आज स्त्रियाँ भी सामने आ रही हैं। सत्तर के दशक से ही साहित्य में स्त्रियाँ का हस्तक्षेप आरंभ हो जाता है। यह वही समय है जब राजेश जोशी भी अपनी काव्य-यात्रा आरंभ करते हैं। आज स्त्रियाँ अपने अधिकार के प्रति सचेत हैं और इसके लिए वे संघर्ष कर रही हैं। उनकी इस लड़ाई

में अधिकांश पुरुष रचनाकारों का सहयोग भी मिल रहा है। राजेश जोशी उन्हीं रचनाकारों में से एक हैं। वे अपनी कविताओं में स्त्री जीवन के दयनीय दशा पर दुःख प्रकट करते हैं। उनकी स्त्रियाँ गाँवों और शहरों से आती हैं जो एक तरफ पारिवारिक दायित्वों से बँधी होती हैं तो दूसरी तरफ शोषण और अत्याचार के दंश को झेल रही होती हैं। परंपरागत धार्मिक और सामाजिक रुद्धियाँ स्त्रियों को जकड़ रखा है। ‘पत्ता तुलसी का’ कविता में कवि राजेश जोशी स्त्रियों के प्रति स्वानुभूति प्रकट करते हुए उनकी मूलभूत आवश्यकताओं पर जोर देते हैं। साथ ही साथ कवि यह भी खुलासा करते हैं कि पुरुषवर्चस्व समाज धर्म और संस्कृति का दुहाई देकर किस प्रकार स्त्रियों को पराधीन बनाकर वर्षों से उनका शोषण कर रहा है। एक उदाहरण देखिये— “रोज रात अपने अपमान में बाहर खड़ी रहती है तुलसी तुलसी के पत्ते में क्या है बिंदा दूर-दूर जंगल तक क्यों जाती हो, गोबर बीनने क्या गैयें बछियें नहीं हैं तुम्हारे धर्म के पास या धर्म की गायें गोबर नहीं करती।”<sup>4</sup>

राजेश जोशी की कविता— रैली में स्त्रियाँ स्त्री जीवन की विवशता, चिंता, बेचौनी और आक्रोश का बखान करती है। जिस प्रकार यह पृथ्वी अपनी धूरी पर लगातार धूमने के बावजूद भी कभी नहीं थकती है, ठीक उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने जीवन की कठिनाइयों, विवषताओं, चिंताओं और बेचौनियों के बावजूद न कभी थकती हैं और न ही अपनी विवषताओं को प्रकट करती है। वह लगातार रैली में चलती ही जाती है इस आशा में कि कभी तो उनके जीवन में बहार आएगी परंतु इस स्वार्थी समाज द्वारा उनका उपयोग के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी नहीं मिलता है। यही कारण है कि रैली में चलते हुये वे कभी—कभी कौंध जाती हैं। उनके आँखों में असमय छलक आए आँसू यह

संकेत नहीं करता है कि वे हार चुकी हैं, बल्कि यह संकेत करता है कि उनके गुस्से की बाँध कभी भी टूट सकता है। कविता के अंत में कवि लिखते हैं— ‘रैली में चलती स्त्री जैसे ब्रह्मांड में अनथक चलती पृथ्वी को देखना है। बाहर वह जितनी दिख रही है। उससे उसके सपनों और उसके भीतर मची उथल—पुथल का अनुमान लगाना नामुमकिन है उसकी आँख में असमय चला आया आँसू उसकी हर का नहीं उसके गुस्से का बाँध दरक जाने का संकेत है’।<sup>5</sup>

एक स्त्री अपने बेटे की मौत के बाद अपना मानसिक संतुलन खो देती है। इस मानसिक असंतुलन की स्थिति में वह बार-बार अपने बेटे को ढूँढती हुई कहती है कि मेरा घोड़ा कहाँ है। अपने बेटे के लिए वह एक घड़े में पानी भरकर रखती है। उसे विश्वास है कि उसका लाल बाजार से जब थका हारा लौटेगा तो वह इसी घड़े से पानी पिएगा। इसलिए वह इस घड़े को बेचना भी नहीं चाहती है। लेकिन इस समाज की नजरिया तो देखिये कि वे उसका चुहुल (मजाक) करने से बाज नहीं आते और कह देता है कि तेरे घोड़े को उधर देखा था। कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं— ‘चुहुल करने को लोग औरत से कह देते अरे अरे अभी उधर देखा था तेरे घोड़े को! कितनी नदियों का पानी मेरे इस घड़े में इस घड़े को मैं किसी के हाथ नहीं बेचूँगी! थका हारा आयेगा मेरा लाल इसी घड़े से पियेगा पानी बाजार से लौटेगा मेरा घोड़ा इसी घड़े से पियेगा पानी और बेटे की मौत से बौरा गई थी घर में बेटे की याद आती थी इसलिए वह कभी घर नहीं जाती थी वह इसी तरह अपने खोये हुए घोड़े को ढूँढती रहती थी दिन रात।’<sup>6</sup> राजेश जोशी की अन्य स्त्री परक कविताओं जैसे— ‘एक आदिवासी

लड़की की इच्छा’ (एक दिन बोलेंगे पेड़), ‘एक लड़की से बातचीत’, ‘आठ लफांगों और एक पागल औरत का गीत’ (नेपथ्य में हँसी), ‘उसकी गृहस्थी’, ‘समय के स्वप्न के चीख’ (दो पंक्तियों के बीच), ‘मेरे भीतर एक स्त्री रहती है’ (चाँद की वर्तनी), ‘आखिरी पत्ता’ (जिद) आदि में भी स्त्री जीवन के विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है जो आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रासांगिक है।

बाल—श्रम इस देश की एक ज्वलंत समस्या है। यह पूँजीपतियों द्वारा फैलाया हुआ एक ऐसा तंत्र है जो बच्चों के बचपन को छिन लिया है जिसका विरोध दुनियाँ भर के संघठनों ने किया है। बाल—श्रम का अर्थ होता है— जिन बच्चों का बचपन और उनके उमंगों को छिनकर तथा शिक्षा से बंचित कर उसे काम में लगाकर उसका शारीरिक, मानसिक और सामाजिक शोषण किया जाता है। भारत के संविधान 1950 के 24वें अनुच्छेद के अनुसार बाल—श्रम कानूनी अपराध है, तथापि हमारे समाज में सर्वत्र इसका उलंघन हो रहा है। बच्चों के भविष्य से खिलावार किया जा रहा है। सुधीर रंजन सिंह के शब्दों में, ‘बच्चों को जादुई दुनियाँ से खींचकर स्वप्नहीन बनाने का काम किया जा रहा है’।<sup>7</sup> राजेश जोशी की कविता—‘बच्चे काम पर जा रहे हैं’ और ‘हमारे समय के बच्चे’ बच्चों के स्वप्नहीनता से जुड़ी हुई महत्वपूर्ण कविता है। कवि लिखते हैं— ‘बच्चे काम पर जा रहे हैं, हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?’<sup>8</sup>

कवि समाज से प्रश्न करते हैं कि बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं? क्या उनके रंग—बिरंगी किताबों को दीमकों ने खा लिया है, क्या उनके सारे खिलौने किसी काले पहाड़ के नीचे दब

गए हैं, क्या सारे स्कूलों और मदरसों की इमारतें किसी भूकंप में ढह गई हैं या क्या सारे मैदान, बगीचे और घरों के आँगन खत्म हो गए हैं? और अगर ऐसा नहीं है तो कोहरे से ढकी सड़क पर बच्चे स्कूल की बजाय काम पर क्यों जा रहे हैं? उनके साथ असभ्य और अमानवीय व्यवहार क्यों हो रहा है? ऐसे अनेकों सवाल हैं जो कवि के हृदय को व्याकुल कर देता है। आज के शिक्षण—संरक्षण भी बच्चों का शोषण कर रहे हैं। सुधीर रंजन सिंह के शब्दों में, “स्कूल जाते बच्चे भी बस्तों के बोझ से लद—फद कर जा रहे हैं, वह भी भयानक है।”<sup>9</sup> यह भी वैश्वीकरण द्वारा फैलाया गया एक साजिश है जिसके माध्यम से पूँजी का विस्तार किया जा रहा है। यहाँ लागत कम और मुनाफा अधिक होता है। बच्चों के इस शोषण—तंत्र का विस्तार सर्वत्र हो रहा है और सत्ता चुप्पी साधे हुए है। कवि राजेश जोशी बच्चों के उत्पीड़न से संबंधित कविता लिखकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उस सपने को साकार किए जिसमें वे कहा करते थे कि वर्तमान हिन्दी कवि बच्चे, भाई—बहन और माँ—बाप को छोड़कर सभी विषयों पर कवितायें लिख रहे हैं।

कवि राजेश जोशी सामाजिक प्रतिबद्धता के कवि हैं। सामाजिक जीवन की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है। व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज का निर्माण होता है। भारत वर्ष की संस्कृति में संयुक्त परिवार का बड़ा महत्व रहा है। लेकिन नित्य बढ़ता उपभोक्तावादी संस्कृति ने इस संयुक्त परिवार को विघटित किया है। इस विघटन से राजेश जोशी बहुत चिंतित हैं। उनका मानना है कि आधुनिक जीवन—शैली हमारे पारिवारिक जीवन को सीमित कर दिया है। संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार का रूप ले लिया है। यह एकल परिवार नाना प्रकार के समस्याओं को जन्म दिया है। एक समय था जब घर में बाबा, दादा, दादी, माँ, पिताजी और

भाई—बहन हुआ करते थे। कोई न कोई हर समय घर में हुआ करते थे। घर में आए अतिथियों को कभी लौटना नहीं पड़ता था। लेकिन आज स्थितियाँ बदल गई हैं। आज हमें घर में ताला लगाकर जाना पड़ता है और अतिथियों को ताला देखकर लौटना पड़ता है। कवि की ये पंक्तियाँ कितनी प्रासंगिक हैं। इन पंक्तियों में कवि की चिंताएँ और व्याकुलताएँ हैं। देखिये—“आया होगा न जाने किस काम से वह न जाने कितनी बातें रही होंगी मुझसे कहने का चली गई हैं बातें भी लौट कर उसी के साथ रास्ते में हो सकता है कहीं उसने पानी तक न पिया हो सोचा होगा शायद उसने कि यहीं मेरे साथ पियेगा चाय कैसा लगता है इस तरह किसी का घर से लौट जाना”<sup>10</sup>

संयुक्त परिवार के विघटन से लोगों का मिलना—जुलना और जान—पहचान कम हो गया है। स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई है कि एक पड़ोसी अपने ही पड़ोसी का नाम तक नहीं जानता है। अब लोग एक—दूसरे के दुःख—सुख में इकट्ठे भी नहीं होते हैं। आपसी प्रेम, श्रद्धा और विश्वास का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है। परिवार टूटने के क्रम में बहुत कुछ टूट गया। अब अपना ही घर का मानो काटने को दौड़ता है। कहीं निकलना हो तो घर को सूना छोड़कर निकलना पड़ता है। इस कारण असामाजिक तत्वों का विस्तार हुआ है। एकल परिवार के विस्तार से हम अपने घर भी सुरक्षित रखते नहीं हैं। कवि की ये पंक्तियाँ इस कथन की पुष्टि करता है—‘यह छोटा सा एकल परिवार कोई एक बाहर चला जाये तो दूसरों को काटने को दौड़ता है घर नये चलन ने बहुत सहूलियत बरखी है चोरों को’<sup>11</sup>

साम्राज्यिकता आधुनिक समाज के लिए अभिशाप है। यह एक ऐसा अभिशाप है जो

इंसान को इंसान से अलग कर दिया है। धर्म, जाति और संप्रदाय के नाम पर आज नफरत, भेदभाव और कटुता विकराल रूप धरण कर चुका है। धर्म और धर्म नीति जब अपना अस्तित्व खो देता है, तब साम्रादायिकता का जन्म होता है। इसी साम्रादायिकता के नाम पर आज पूरे विश्व में भीषण रक्तपात हो रहा है। भारत वर्ष भी इस घृणित परम्परा से अछूता नहीं है। भारतीय संविधान के अनुसार भारत वर्ष एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। अर्थात् इस देश में सभी धर्मों के अनुयायी निवास कर सकते हैं तथा बिना किसी धर्म को ठेस पहुंचाए अपने धार्मिक विचारों को मनुष्य के हित में साझा कर सकते हैं। परंतु स्थितियाँ विपरीत हैं। यहाँ तो लोग धर्म और संप्रदाय के नाम पर एक—दूसरे का दुश्मन बने हुये हैं। कवि राजेश जोशी समाज की इस घृणित मानसिकता से क्षुब्ध हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में इस प्रकार के अनेक साम्रादायिक दंगों और हिंसात्मक घटनाओं को देखा है। दिल्ली, गोधरा, भोपाल, कानपुर, भागलपुर, मेरठ आदि शहरों में जो साम्रादायिक हिंसा हुये, उनमें किस प्रकार मानवता का पतन हुआ, एक साथ खाने—पीने वाले, एक साथ रहने वाले और एक साथ पढ़ने—लिखने वाले किस प्रकार आपस में एक—दूसरे का दुश्मन हो गए, यह अकल्पनीय है। मानवीय संबंध समाप्त हो गए। भारतीय संविधान की धज्जियाँ उड़ा दी गई। राजेश जोशी की कविताओं में साम्रादायिकता के इस नंगे स्वरूप को भली—भांति देखा जा सकता है। राजेश जोशी की 'सलीम और मैं और उनसठ का साल—एक', 'सलीम और मैं और उनसठ का साल—दो,' 'चौरासी बँगले,' 'रमजान मियाँ बतर्ज भोपाल' (एक दिन बोलेंगे पेड़), 'मेरठ—87,' 'दिल्ली—88' (नेपथ्य में हँसी), 'बर्बर सिर्फ बर्बर थे' ('दो पंक्तियों के बीच), 'रफीक मास्टर साहब और कागज के फूल,' 'पागल' (चाँद की वर्तनी)

आदि कवितायें साम्रादायिकता के इसी भयंकर स्वरूप का बयान करती हैं।

'सलीम और मैं और उनसठ का साल'—एक और दो केवल एक कविता ही नहीं है, बल्कि सन 1959 ई० के भोपाल साम्रादायिक दंगे का आख्यान है जिसे राजेश जोशी ने अपनी आँखों से देखा था। इस प्रकार के मर्मभेदी और संवेदनशील कविता हिन्दी में बहुत कम लिखे गए हैं। वह समय मनुष्य के दानवी रूप में बदल गया था। कवि और सलीम एक स्कूल और एक ही कक्षा में पढ़ने वाला दो अभिन्न मित्र था। वे दोनों साथ—साथ स्कूल जाते थे और साथ—साथ लौटते थे। एक दिन की बात है। अचानक परिस्थितियाँ असामान्य हो गया। कवि लिखते हैं— "यह उनसठ की धुलैड़ी के आस—पास की बात है मैं भूला नहीं हूँ, वह मार्च के पहले सप्ताह का शुक्रवार था एक अपरिचित लेकिन डरावनी दुर्गम्ध अचानक फैल गई थी हवाओं में।"<sup>12</sup>

हवा में फैली यह अपरिचित और डरावनी दुर्गम्ध किसी सड़ी वर्जित पदार्थ का नहीं था, बल्कि दंगा से फैला हुआ दुर्गम्ध था। अचानक पथरों की बरसात होने लगी। लाठी, डंडे और चाकू लेकर असामाजिक तत्व चौराहे पर नंगा नाच करने लगा। दूकानें लुटी जा रही थी। चारों तरफ खून की नदियाँ बहने लगी। इस अमानवीय दृश्य को देखकर दोनों मित्र किसी सँकरी गली से जान बचाते हुए भागे। वह एक भयावह दृश्य था। उस भयावह दृश्य का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं— 'बच्चे मार डाले गए फूल मार डाले गए, शब्द मार डाले गए सिर्फ सर्फा बच गया।'<sup>13</sup>

आश्चर्य की बात है कि इस दंगे में बच्चे, फूल और शब्द मार डाले गए, लेकिन सर्फा बच गया। अर्थात् दंगा फैलाने वाले

शक्तियों का कुछ नहीं बिगड़ा। पूंजीवादी शक्तियाँ कायम रहा। इस दंगे में जिनकी जाने गई, जिनके घर जला दिये गए और जिनकी दूकाने लुटी गई, वे सब आम आदमी थे। उन्हें इस प्रकार की गतिविधियों से कोई मतलब नहीं होता है। लेकिन यही वर्ग हर समय जुल्म, हत्या और कट्टरता के शिकार होते हैं। तभी तो कवि लिखते हैं— ‘छगनलाल सेठ के मकान पर खरोंच भी नहीं आई फखरू भाई का पेट्रोल पम्प नहीं जला कि मोचीपुरे की पूरी पट्टी साफ हो गई।’<sup>14</sup>

आखिरकार तीन लंबे और क्रूर सप्ताह के बाद स्थिति सामान्य हुई। मदरसे, स्कूल और किताबें खुली। दोनों मित्र एक साथ स्कूल के कमरे में प्रवेश किया। दोनों एक ही बैंच पर बैठे, लेकिन साथ—साथ नहीं, बल्कि दो किनारों पर। दंगों ने धर्म के नाम पर दोनों मित्रों को अलग कर दिया। मानवीय रिश्ते टूट गए। कवि लिखते हैं— ‘हम एक ही दरवाजे से आए थे अन्दर तकरीबन साथ—साथ उसी बैंच पर बैठे थे लेकिन साथ—साथ नहीं तुम एक छोर पर थे रशीद और इदरीस के साथ, और मैं था दूसरे छोर पर फुलवानी के साथ। इस तरह शुरू हुआ था एक नया दिन इस तरह शुरू हुए थे नए दिन।’<sup>15</sup>

कविता के दूसरे भाग में कवि सांप्रदायिकता को ‘अँधेरे का पेड़’ कहा है क्योंकि अब यहाँ गुलाब के फूल नहीं, बल्कि अफीम के फूल खिलने लगा था। अब ईश्वर और अल्लाह का पाठ पढ़ाये जाने लगा। कवि भी इससे अछूता न रह सका। वे भी समाज के इस कुप्रथा के पीछे—पीछे चल रहे थे। वे लिखते हैं— ‘जिसने जैसा—जैसा कहा मैंने वैसा—वैसा मान लिया और मैं भी रम गया उसकी खुशबू में उसके फूलों में, फलों में और उसके अँधेरे में।’<sup>16</sup> इस प्रकार सांप्रदायिकता का पाठ पढ़ाये जाने लगा। यह सांप्रदायिकता जमीन से जात

होते हुए, धर्म होते हुए और धर्म से उनसठ का साल हो गया जिसे कवि ने एक चाकू की तरह देखा था जो शहर को दो भागों में काट दिया। कवि इस भयानक दृश्य को इस रूप में बयान किया है— ‘उनसठ के साल मैंने देखा उसे एक चाकू की तरह जहर बुझे नीले चाकू की तरह वह तना हुआ था शहर की हवा में बीचोबीच देखते—देखते शहर को काट डाला उसने दो हिस्सों में तरबूज की तरह। दोनों ही हिस्से गीले और लाल एकदम एक—से काले बीज दोनों तरफ थे।’<sup>17</sup>

कहना न होगा कि ये काले बीज नफरत और धृणा के बीज थे जो सांप्रदायिकता रूपी अँधेरे के पेड़ में फूले—फले थे और जो दो मित्रों के रूप में पूरे समाज को एक दूसरे से अलग कर दिया था। कवि इसका वर्णन इस रूप में किया है— ‘और जाली—अधजली गलियों से निकलते हुए हम दो लंगोटिए यार शहर के दो विपरीत धुवों की ओर चले गए दो विपरीत अँधेरों की ओर।’<sup>18</sup>

सामाजिक विसंगति का एक महत्वपूर्ण कारण है— समाज में वर्ग—भेद। अर्थात हमारे समाज में दो वर्ग हैं— शोषक वर्ग और शोषित। शोषक वर्ग में पूंजीपति आते हैं, जिसे राजेश जोशी ‘ऊँचे ओहदे वाले’ कहते हैं। इनकी संख्या कम होती है, परंतु इन लोगों के नाम सब जगह उल्लेख किये जाते हैं। शोषित वर्ग को राजेश जोशी ‘इत्यादि’ कहते हैं, क्योंकि ये बेनाम होते हैं। इनकी संख्या ओहदे वाले लोगों की तुलना में अत्यधिक होते हैं तथा समाज के सभी गतिविधियों में शामिल होते हैं। खास लोगों के भाषण सुनने, गोष्ठियों में उपस्थिति दर्ज कराने, जुलूस में नारे लगाने, लंबी कतार लगाकर मतदान कराने, लोकतन्त्र में सरकार बनाने और आंदोलन कराने में इन्हीं बेनाम लोगों का उपयोग किया जाता है। इस क्रम में ये लोग कभी—कभी

पुलिस की गोलियों के शिकार भी हो जाते हैं। चुंकि इनका नाम और कोई ठौर-ठिकाना नहीं होता, इसलिए मरने के बाद ये लोग 'इत्यादि' ही रह जाते हैं। यह समाज की कितनी गंभीर विसंगति है कि जो लोग समाज के हर क्षेत्र में काम आता है वही बेनाम और इत्यादि बनकर रह जाता है और जो समाज को लूट रहे होते हैं वे नाम और ओहदे वाले लोग कहलाते हैं। ऐसे बेनाम और इत्यादि लोगों के नाम कवियों की कविताओं में अवश्य ही मिल जाता है, क्योंकि रचनाकर ही वह व्यक्ति होता है जो इन इत्यादि लोगों के व्यथा को समझते हैं और इनके पक्ष में कलम उठाते हैं। 'इत्यादि' कविता के कुछ अंशों को उदाहरण स्वरूप उद्धृत किया जा सकता है— 'इत्यादि हर जगह शामिल थे पर उनके नाम कहीं भी शामिल नहीं हो पाते थे। इत्यादि बस कुछ सिरफिरे कवियों की कविता में अक्सर दिख जाते थे।'<sup>19</sup>

कवि राजेश जोशी अपनी कविताओं में अन्य सामाजिक विसंगतियाँ जैसे— अंध—विश्वास, अशिक्षा, रिश्वत खोरी, भ्रष्ट शासन व्यवस्था आदि पर भी पूरे सिद्धत के साथ कलम उठाते हैं। नरेश सक्सेना के शब्दों में, "राजेश की राजनीतिक सम्मान की कविताएं रेटारिक या स्थूल होने की जगह बारीकी और नफासत का नमूना पेश करती है।"<sup>20</sup> कहना न होगा कि राजेश जोशी की कविताओं में गहन सामाजिक संवेदना है। उनकी भाषा सरल, स्पष्ट एवं संश्लिष्ट है जिसे साधारण कोटि के पाठक भी सहज ही समझ लेते हैं। भोपाल की चलती भाषा इनकी कविताओं में सहज ही दिख जाते हैं। सारांश यह है कि राजेश जोशी का काव्य भाव और कला पक्ष की दृष्टिकोण से मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास दिलाता और मनुष्यता को बचाने की बात करता है।

• • • • •

## संदर्भ—सूची :

1. राजेश जोशी प्रतिनिधि कविताएं, संपादक— सुधीर रंजन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 5
2. समरगाथा, राजेश जोशी, पहले पहल प्रकाशन, भोपाल, संस्करण— 2012, पृ. 5
3. कवि ने कहा (चुनी हुई कविताओं का संकलन), राजेश जोशी, किताब घर प्रकाशन, संस्करण— 2012, पृ. 8
4. धूप धड़ी(एक दिन बोलेंगे पेड़), राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण—2014, पृ. 73
5. चाँद की वर्तनी, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 33
6. नेपथ्य में हँसी, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 1994, पृ. 69—70
7. राजेश जोशी प्रतिनिधि कविताएं, संपादक— सुधीर रंजन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 16
8. नेपथ्य में हँसी, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 1994, पृ. 23
9. राजेश जोशी प्रतिनिधि कविताएं, संपादक— सुधीर रंजन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण— 2013, पृ. 16
10. दो पंक्तियों के बीच, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण—2014, पृ. 56—57
11. वही, पृ. सं. 55
12. धूप धड़ी (एक दिन बोलेंगे पेड़), राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण—2014, पृ. 56—57
13. वही, पृ. सं. 58—59
14. वही, पृ. सं. 59
15. वही, पृ. सं. 60
16. वही, पृ. सं. 63
17. वही, पृ. सं. 64
18. वही, पृ. सं. 66

19. दो पंक्तियों के बीच, राजेश जोशी, राजकमल

प्रकाशन, संस्करण—2014, पृ. 14

20. वही, फलेप पृष्ठ से। □



## 2022 नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ!

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि पैरोकार के लिए जो भी रचनाएँ भेजे वह यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) Font में अवश्य होनी चाहिए।

कृपया आप से आग्रह है कि पैरोकार (त्रैमासिक) पत्रिका का सदस्यता लेकर हमारे रचनात्मक कार्यों में सहयोग करें।

E-mail ID- [pairokarpublication@gmail.com](mailto:pairokarpublication@gmail.com)

[m9903849713@gmail.com](mailto:m9903849713@gmail.com)

मनोज कुमार (प्रबंध संपादक)

## भारतीय नारी विमर्श की आधारशीला : सावित्री बाई फुले और ताराबाई शिंदे

**भारत** के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी को नवजागरण समाज सुधार और परिवर्तन की शताब्दी कहते हैं। इस शताब्दी की सामाजिक क्रांति और सुधारों का जब भी जिक्र किया जाता है तो महात्मा फुले डॉ. अम्बेडकर, शाहूजी महाराज, गोपाल गणेश आगरकर, महर्षि कर्वे और कर्मवीर भाऊराव पाटील आदि सुधारकों का नाम अग्रक्रम से लिया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी की क्रांतिकारी महिलाओं का जिक्र करना हो तो सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे, फातिमा शेख, मुक्ता सालवे, तानुबाई गिरजे और पंडिता रमाबाई का नाम लिया जाता है।

सामाजिक क्रांति के पितामह महात्मा फुले द्वारा पूणा में लड़कियों के लिए 1848 ई. में देश की प्रथम पाठशाला खोली गयी थी। उस स्कूल में पढ़ाने वाली देश की प्रथम महिला शिक्षिका और प्रधानाध्यापिका के तौर पर सावित्री बाई फुले जी को जाना जाता है। यह शानदार शक्तिसंयत भारत में स्त्री शिक्षा और स्त्री मुक्ति की निःसंदेह अग्रदृत है।

सावित्रीबाई फुले (1831–1897) ने अपने पति ज्योतिराव फुले के साथ पाँच दशकों तक सार्वजनिक जीवन में कार्य किया है। शिक्षा के बागेर मनुष्य और जानवर में अधिक अंतर नहीं रहता है, विवेक बुद्धि के विकास के लिए शिक्षा जरूरी माध्यम है, ऐसी धारणा फुले दंपत्ति की थी। इसी लिए 1848 ई. में पूणे के भिड़वाड़ा में स्त्री शुद्राति शूद्र के उत्थान के लिए शिक्षा अभियान आरंभ किया गया। फुले जी का कहना था कि शिक्षा नहीं मिलने से ही स्त्री-शुद्रातिशूद्रों का सर्वनाश हुआ है। इस पहली पाठशाला में सभी जाति-धर्म की लड़कियां पढ़ने आती थीं। लड़कियों का इस तरीके से ज्ञानार्जन करना तत्कालीन धर्म मान्यताओं में धर्मग्रष्ट होना था।

**रणवीर सुमेध भगवान**

**सहायक प्रोफेसर**

मराठी विभाग,  
विश्वभारती विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल

इसीलिए यह कार्य जब आरंभ हुआ तब तथाकथित धार्मिक ठेकेदार और मनुवादियों द्वारा फूले दंपत्ति पर अनेक हमले किए गए, अनेक तरह से विरोध किया गया। लेकिन फुले दंपत्ति ने यह कार्य नहीं छोड़ा।

वर्ष 1852 ई. तक फुले दंपत्ति ने पूणे में लगभग 18 पाठशालाएं शुरू किए थे और इन पाठशालाओं में 250 से अधिक छात्र-छात्रा शिक्षा अर्जित कर रहे थे। इन स्कूलों की प्रथम परीक्षा 17 फरवरी, 1854 में हुई थी, तब यह परीक्षा देखने के लिए तीन हजार से ज्यादा लोगों की भीड़ विश्रामबाग, पूणे यहाँ पर इकट्ठा हुई थी। ऐसा तत्कालीन अखबार ‘बॉम्बे गार्डियन’ में प्रकाशित रिपोर्ट कहता है। सावित्री बाई फुले की धारणा थी कि स्त्रियों की गुलामी दोहरी गुलामी है। एक धर्म शास्त्र द्वारा घोषित गुलामी और दूसरी पितृसत्ता द्वारा घोषित गुलामी। इस गुलामी से निजात पाने का जरिया वह शिक्षा को मानती थी। सावित्री बाई फुले की समकालीन जो भी सुधारक लोग स्त्री शिक्षा की पहल कर रहे थे, उनकी दृष्टि में शिक्षा बेहतर पत्नी और मां बनने का माध्यम था। किंतु सावित्री बाई के दृष्टिकोण से शिक्षा गुलामी से मुक्ति पाने का औजार था। फुले दंपत्ति के शिक्षा कार्य संबंध में ‘द पूर्ण ऑबर्जर्वर’ अखबार कहता है ‘यह काम हिंदू समाज, संस्कृति के इतिहास में नये पर्व का आरंभ है’। स्त्रियों को शिक्षा मिलनी चाहिए या नहीं इस मत-मतांतर से 1850 के दशक की पत्रिकाएं और अखबार भरे पड़े हैं।

सावित्री बाई फुले देश की प्रथम शिक्षिका होने के साथ—साथ वह देश की प्रथम दशीय ग्रंथागार (Native Library) की निर्माता भी हैं। इसके अलावे महिलाओं के हक एवं अधिकारों के लिए जागृति लाने वाली 'महिला सेवा मंडल' नामक संगठन की प्रथम संगठक नेता थी। बाल—विवाह, सती प्रथा, विधवा मुंडन, दहेज—प्रथा, स्त्री शोषण और छुआ—छूत जैसे सामाजिक कूप्रथा और समस्याओं को लेकर सावित्री बाई ने बुनियादी कार्य किया है। 1864 ई. में फुले दंपत्ति ने पूणे में 'बाल हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना कर लैंगिक शोषण से माँ बनने वाली विधवा और लड़कियों को सहारा दिया था। बाल हत्या प्रतिबंधक गृह के दस्तावेजों में 35 ब्राह्मण विधवाओं के प्रसूती की जानकारी मिलती है। ऐसे ही काशीबाई नामक विधवा के नाजायज बच्चे को फुले दंपत्ति ने गोद लेकर अपना बारीश बनाया था।

अपने पति का अंधा अनुकरण करने वाली सावित्रीबाई फुले नहीं थी। वह स्वयंप्रज्ञ और स्वतंत्र सोच रखने वाली महिला थी। 1890 ई. में ज्योतिराव फुले की मृत्यु के उपरांत उनके अंतिम यात्रा में मटका हाथ में लेकर अग्निदाह संस्कार सावित्रीबाई फुले ने ही किया था। इस तरह महिलाओं के द्वारा अग्नि दाह देना यह उस समय अभूतपूर्व घटना थी। पति निधन के बाद सावित्रीबाई फुले ने विधवा मुंडन के खिलाफ सत्यशोधक नेता नारायण मेघाजी लोखंडे के साथ अभियान चलाया था। 1897 ई. में प्लेग की महामारी से भयंकर आपदा आई थी। ऐसे समय में सावित्री बाई फुले और उनके डॉक्टर बेटे (यशवंत) रोगियों की निःशुल्क सेवा कर रहे थे। इसी क्रम में प्लेग से बाधित होकर 1897 ई. में सावित्री बाई फूले की मृत्यु हो जाती है। पाँच दशकों से चला आ रहा समाज सेवा का यह कार्य उन्होंने अपने अंतिम सांस तक किया।

सावित्री बाई द्वारा लिखित कुल दो रचना संग्रह प्रकाशित है। 1. काव्यफुले 1854, 2. बावनकशी सुबोध रत्नाकार 1892 और 'कर्ज' नामक एक निबंध भी उनके द्वारा प्रकाशित है। सावित्रीबाई आधुनिक मराठी साहित्य की इतिहास में पहली आधुनिक महिला रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं का विषय स्त्री शोषण, स्त्री शिक्षा, स्वतंत्रता, पेशवाई, मनुष्यता, बलिराजा और शिवाजी महाराज आदि है। अपनी एक रचना में सावित्री बाई कहती है – “ज्ञान नहीं विद्या नहीं, वह लेने की जिद भी नहीं बुद्धि होकर व्यवहार नहीं, उसे मनुष्य कहें क्या? गुलामी का दुख नहीं, उसका एहसास भी नहीं, इंसानियत की समझ भी नहीं, उसे मनुष्य कहें क्या?”<sup>1</sup>

सावित्री बाई की चिंतनधारा में समग्र स्त्री मुक्ति का अलख है। शिक्षा उसका एकमात्र महज औजार है। उनका यह कार्य स्त्रियों को अपवित्र मानने वाले, उन्हें ज्ञानार्जन का हक न देने वाले, 'न स्त्री स्वतंत्र अहर्ति' कहने वाले धर्मशास्त्र के सामने चुनौति थी। सावित्रीबाई की इस महान कार्य के प्रति कृतज्ञता का इजहार करने के लिए 2015 में जिस पूणे विश्वविद्यालय को पूरब का ऑक्सफर्ड माना जाता है उसे सावित्री बाई फुले का नाम दिया गया है।

ताराबाई शिंदे (1850–1910) को 1882 में प्रकाशित उनके निबंध 'स्त्री—पुरुष तुलना' के कारण जाना जाता है। इस एक निबंध ने उनका नाम मराठी साहित्य इतिहास में मुकम्मल किया है। ताराबाई के पिताजी बापूजी हरि शिंदे ज्योतिराव फुले जी के सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता थे। इसलिए इस निबंध पर फुले जी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। ताराबाई का यह निबंध तत्कालीन 'पूणे वैभव' पत्रिका में विजया लक्ष्मी केस के संदर्भ में लिखे गये एक लेख का प्रतिवाद है। शिवाजी प्रेस पूणे से प्रकाशित यह 50 पन्नों का

यह निबंध विस्फोटक विषयों के कारण बहुचर्चित हुआ था। तारा बाई ने इस निबंध से महिलाओं को गुलाम बनाने वाले, उसे अपवित्र समझने वाले, उसे जानवर समझने वाले पुरुष सत्ता और धर्म सत्ता के लैंगिक राजनीति पर कोठाराधात किया है। ताराबाई का यह आधात स्त्री—पुरुष में मौजूद जैविक भेदों पर नहीं है बल्कि स्त्री—पुरुषों में निर्माण किए गए मनुष्य निर्मित गैर बराबरी और श्रेष्ठहीनता की भावना पर है। ताराबाई स्पष्ट तौर पर कहती है कि सारे धर्म ग्रंथों के निर्माता पुरुष हैं इसलिए उन्होंने अपने वर्चस्व और श्रेष्ठता का स्वयं बखान किया है जोकि स्त्री विरोधी है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में स्त्री—पुरुषों में तार्किक तुलना, विवेकपूर्ण और आक्रामक रचना का मराठी साहित्य में निर्माण अभूतपूर्व घटना थी। इस रचना के बारे में इंग्लिश आलोचक सस्यु थारू और के. ललिता कहती है "Stri - Purush Tulana is probably the first full - fledged and extent feminist argument after the poetry of the Bhakti Period"<sup>12</sup> विश्लेषण हेतु इस निबंध को तीन भागों में बांटा जा सकता है। 1. विधवा पुर्नविवाह 2. परिवार में होने वाला महिला शोषण 3. पुरुषों में मौजूद दुर्गुण एवं दुराचार। इस रचना के माध्यम से तारा बाई ने स्त्री को अपवित्र, गुलाम और नरक का प्रवेश द्वारा कहने वाले परंपरा के सामने तर्क—संगत सवाल खड़े किए हैं। परंपरा चाहे धार्मिक हो या सामाजिक सवाल करना जरूरी होता है। इस बारे में महान तर्कशास्त्री सॉक्रटीस कहते हैं "I know You want believe me, but the highest form of human excellence to question one self and others"<sup>13</sup> इसी तर्ज पर तारा बाई शिंदे भी धर्म शास्त्र व पुरुष सत्ता से बेवाकी से सवाल पूछती है।

निबंध के आरंभ में ही ताराबाई पूछती है कि स्त्री धर्म क्या है? वह पति की आज्ञा का

पालन करना है या चुपचाप गालौज सहना और उसकी लात खाते रहना है क्या? पति को रखेल रखने की मान्यता देना, उसके तमाम गलत कार्यों को चुपचाप देखते रहना, यही स्त्री धर्म है क्या? इस तरह तीखे शब्दों में तारा बाई शिंदे स्त्री धर्म, पतिव्रत, पंच कन्या स्मरण (अहिल्या, दौपदी, सीता, तारा, मंदोदरी) इनका उपहास करती है। पुरुष सत्ता अपने आप में एक वृहत शड्यंत्र है और उसके कारक धर्म, धर्म ग्रंथ और परंपरा है। तारा बाई इन कारकों को मुजरिम की तरह कटघरे में खड़ा कर सवाल पूछती है।

1. हे भगवान आप निष्पक्ष हैं, और आपने ही स्त्री और पुरुष दोनों का निर्माण किया है फिर दोनों में इतनी असमानता क्यों?
2. स्त्री—पुरुष एक दूसरे पूरक हैं और दोनों में से एक के बगैर समाज की कल्पना की जा सकती है?
3. दुराचारी दुर्गुणी पति को परमेश्वर क्यों मानें?
4. सती प्रथा अगर समर्पण और प्रेम का प्रतीक है तो एक भी पुरुष अभी तक अपनी पत्नी के लिए 'सता' क्यों नहीं गया?
5. पुराण में सावित्री अपने पति सत्यवान का प्राण यमराज से छीन कर लाती है। इस तरह के उदाहरण पुरुषों में हैं क्या?
6. पुरुष उदार, धार्मिक और प्रज्ञावंत हैं तो फिर उनके मन में स्त्रियों के लिए करुणा का भाव क्यों नहीं है?
7. सब तरह की पाबंदियां मात्र स्त्रियों के लिए हैं। वह पुरुषों के लिए क्यों नहीं?
8. सब पुरुष सद्गुणी, सदचरित्र हैं तो सारे के सारे कारागृह पुरुषों से ही क्यों भरे हुए हैं? पुरुष एक से अधिक शादियां करता है। वैवाहिक धर्म को ताख पर रखकर रखेल रखता है। स्त्रियों ने ऐसा कभी किया है क्या?

9. अगर पुरुषों को कुरुप, गंदी और गवाँर महिला के साथ रहना पंसद नहीं है तो फिर इस तरह के पुरुषों के साथ महिला क्यों रहे।
10. देवता राम, इंद्र, विश्वामित्र और परशुराम जैसे देवताओं का चरित्र पुरुष सत्ता का पर्यायवाची है तो फिर महिला इन देवताओं से और उनके भक्तों से न्यायपूर्ण व्यवहार की उम्मीद कैसे करें?

इन सवालों के माध्यम से पुरुष सत्ता का वर्चस्ववादी चेहरा ताराबाई सामने लाती हैं। ताराबाई लगातार जिस पुरुष सत्ता का जिक्र कर रही है उसे स्त्रीवादी आलोचक उमा चक्रवर्ती 'ब्राह्मणी पुरुष सत्ता' कहती है। तारा बाई की यह रचना यूरोप में स्त्रीवादी आंदोलन शुरू होने के पहले और स्त्रीवादी साहित्य निर्माण होने के पहले लगभग पचास वर्ष पूर्व मराठी में 1882 में प्रकाशित हुई थी। केट मि लेट—सेक्सचुअल पॉलिटिक्स 1970, वर्जिनिया उल्फ—अ रुम ऑफ वन्स वॉन 1929, सिमांन द बेहुवार—द सेकण्ड सेक्स 1949 इन स्त्रीवादी रचनाओं के पहले तारा बाई शिंदे की यह रचना प्रकाशित हुई थी। इस निबंध के संदर्भ में विदुषी गेल ऑम्वेट कहती हैं— 'Stree Purush Tulana is path finder of Indian feminism'<sup>4</sup> उमा चक्रवर्ती, सस्यु थारू, के. ललिता, रोजलिंड वो हेनलन और जय अर्जुन सिंह जैसे कदावर विचारकों ने इस निबंध पर लेख लिखे हैं और अनुवाद किया है।

इस निबंध के बारे में जय अर्जुन सिंह अपने लेख 'रामचंद्र गुहा ऑन द मेकर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया' में लिखते हैं "The excerpts from Tarabai Shindes work about the suppression of women in Maharashtra truly remarkable for its time- Why is she not better known"<sup>5</sup> यह तथ्य सच है क्योंकि ताराबाई शिंदे का नाम आज भी स्त्री विमर्श के क्षेत्र में अनभिज्ञ है। 1885 में

महात्मा फुले ने सत्सार नामक निबंध में ताराबाई के निबंध को मौलिक मान कर इसकी तारीफ की थी। इस निबंध पर लिखते हुए ज्योतिराव फूले जी ने संत कबीर का दोहा उद्धृत किया था। "जिस तन लागि वही तन जानी बिजा क्या जानि गळारा रे।"<sup>6</sup>

इतनी मौलिक रचना प्रकाशन के 125 साल बाद भी उपेक्षित क्यों रही? यह गंभीर सवाल है। धर्मसत्ता, देवता और परंपराओं पर तीखे शब्दों में किया गया हमला छद्म स्त्रीवादियों को शायद परसंद नहीं आया। ताराबाई ने इस रचना में तत्कालीन मराठी रचनाओं की भी आलोचना की है। यह आलोचना स्त्रीवादी दृष्टिकोण से पुरुषों द्वारा लिखे गये साहित्य के पुनर्पाठ का आरंभ था। जिस समय नारीवाद, नारी विमर्श जैसे संज्ञाओं का जन्म भी नहीं हुआ था ऐसे समय में तारा बाई ने पुरुषों द्वारा रचित रचनाओं में स्त्री चरित्र का चित्रण कैसे किया इसकी आलोचना की है। उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य में स्त्री चरित्र की भूमिका केवल शृंगार और मनोरंजन तक सीमित थी जो ताराबाई को मंजूर नहीं थी। इस निबंध को प्रतिक्रियावादी और नकारात्मक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें एक स्वरूप समाज की कामना की गई है। यह स्वरूप समाज सदाचारी पुरुष और सदाचारी स्त्रियों के न्यायपूर्ण, समानता के व्यवहार से कायम होगा। महिलाओं को मनुष्य मानकर उसके साथ समानता का न्यायपूर्ण व्यवहार हो यह उम्मीद भारतीय समाज से तारा बाई ने की थी। इस निबंध में नारी विमर्श के साथ—साथ स्त्रीवादी आंदोलन को नया नजरिया और गति देने का महत्वपूर्ण काम किया है।

सावित्रीबाई फुले और ताराबाई का विचार मनुष्य निर्मित असमानता और शोषण के खिलाफ था। उसमें समतामूलक समाज, शोषण रहित समाज की मुकद्दस कामना निहीत है। सावित्रीबाई

फुले, ताराबाई शिंदे फातिमा शेख, पंडिता रमाबाई, मुक्ता साल्वे, तानुबाई गिरजे और आनंदीबाई जोशी इन्होंने देखा हुआ स्त्री मुक्ति का सपना इककीसवीं शताब्दी में कुछ मर्यादा में ही सही सच होता दिख रहा है। इस संदर्भ में फ्रांसीसी फिलॉसफर हिकटर व्यूगो कहते हैं “दुनिया की कोई ताकत उन विचारों को रोक नहीं सकती है जिनके आने का समय आ गया हो”<sup>7</sup> यह समय और यह सदी नारी मुक्ति की होगी।

• • • • • • •

### संदर्भ सूची :

1. स्त्री—पुरुष तुलना, संपा. डॉ. विजय खोले, 15 अगस्त, 1997, प्रतिमा प्रकाशन पूणे
2. सावित्रीबाई फुले समग्र वाड़मय—संपादन म. गो. माली, 2006, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति महामंडल, मुंबई
3. महात्मा फुलेरु शोधाचा नव्यावाटा, संपा. हरी नरके, डॉ. अम्बेडकर, महात्मा फुले आणि राजर्षि शाहु चरित्र, साधने प्रकाशन समिति, महाराष्ट्र शसन, मुंबई
4. Womens Writing in India 600 BC to Present. Susie Tharu and K- Lalita oxford University Press 1991
5. स्त्रीवादी फुले, ललिता धर, संपा. आयवन कोस्का, फॉरवर्ड प्रेस, नवंबर 2015,
6. सत्सार—2 महात्मा फूले समग्र वाड़मय, संपादक धनंजय कीर, डॉ. स. ग. मालशे, 2006, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति महामंडल, मुंबई
7. Towards the theory of Brahmanical patriarchy (Review) Gail Omvedt, Economic and Political weekly, Vol -35, January 22, 2000

कल्पना, ज्ञान की अपेक्षा अधिक  
महत्वपूर्ण है।

— अलबर्ट आइन्स्टाइन

राइट बंधु की कल्पना ने, आकाश में उड़ने वाले विमानों का जन्म दिया।

जार्ज इस्टमेन की कल्पना ने, रंगीन फिल्मों का जन्म दिया।

ग्रेहाम बेल की कल्पना ने, टेलीफोन को जन्म दिया।

बीलगेट्स की कल्पना ने, माइक्रोसॉफ्ट का जन्म दिया।

महात्मा गाँधी की कल्पना ने, आजादी का जन्म दिया।

डॉ. अम्बेडकर की कल्पना ने, संविधान का जन्म दिया।

---



---

सत्य सादगी में ही पाया जा  
सकता है, अनेकरूपता या  
वस्तुओं के भ्रम में नहीं

आइज़क न्यूटन

## साहित्य में स्त्री-विमर्श की भूमिका

**प्रस्तावना :** किसी स्थान, क्षेत्र या काल के सम्बन्ध में यदि पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसके साहित्य का अध्ययन करें, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में जो घटित होता है वह साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समाज के दो महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री-पुरुष हैं। इनके बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, सृष्टि निर्माण में इन दोनों की बराबर भूमिका है। लेकिन समाज की यह आधी आबादी अर्थात् स्त्रीयाँ हर क्षेत्र में उपेक्षित ही दृष्टिगत हुई हैं। अपने अस्तित्व के लिए सदा लड़ती रही है। पुरुष सत्तात्मक समाज में अपने को बचाने के लिए इन्हें जदोजहद करनी पड़ती है। इनका संघर्ष साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यदि हम हिन्दी साहित्य की बात करें तो स्त्री विमर्श महोदेवी वर्मा के साहित्य में देखने को मिलता है। आधुनिक काल में आते—आते इसने एक विस्तृत रूप को प्राप्त करने का प्रयास किया है।

### साहित्य में स्त्री-विमर्श की भूमिका :

स्त्री के बिना साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। विभिन्न युगों से प्रसिद्ध हुई विभिन्न रचनाओं में स्त्री का उल्लेख मिलता है। लेकिन वह एक त्याग, बलिदान एवं सामाजिक परम्पराओं में जीना ही उसका आदर्श माना गया है। वह सीता हो, द्रौपदी हो, अहिल्या हो आदि कोई भी स्त्री पात्र हमेशा पुरुषों द्वारा छली गई। पुरुष समाज उसे अपनी बराबरी देने में हमेशा कतराता रहा है। जो प्रत्येक साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की बात की जाए तो महादेवी वर्मा के साहित्य में इसका प्रारम्भ माना जाता है। जबकि इससे पूर्व मीरा के पदों में भी स्त्री स्वतन्त्रता के चिन्ह दिखाई देते हैं।

### कुमारी भारती (शोध छात्रा)

हिन्दी विभाग

एस. एस. जे. परिसर अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

क्योंकि मीरा बाई ने ही समाज की बेड़ियों को तोड़ने का प्रथम प्रयास किया है। उनके साहित्य में स्त्री स्वतन्त्रता एवं स्त्री को एक अलग रूप में देखने को मिलता है, और समाज ने मीरा पर अनेक आरोप—प्रत्यारोप लगाए। स्त्रीयों के सम्बन्ध में प्रेमचंद लिखते हैं : यदि पुरुष में स्त्री के गुण आ जाते हैं तो वह साधु हो जाता है और यदि किसी स्त्री में पुरुष के गुण आ जाए तो वह कुलटा हो जाती है। लेकिन वैदिक काल में स्त्रियों की दशा देवी के रूप में देखा जाता था। मनु ने इस संदर्भ में लिखा है—“वैदिक युग में महिलाएं देवी के रूप में पूजी जाती थी।”<sup>1</sup> लेकिन वर्तमान समय में महिलाएं भले ही पुरुषों की बराबरी करती हैं। लेकिन आज भी स्त्रियों कहीं सुरक्षित नहीं हैं। इसका अन्दाजा निर्भया कांड से लेकर आए दिन घरेलू हिंसा की शिकार होती महिलाओं एवं असुरक्षित छोटी-छोटी बच्चियों से लगाया जा सकता है। मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार— “ऐसा एक भी समाज नहीं है जहाँ स्त्रियां सुरक्षित हो या उन्हें पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा प्राप्त हो, असुरक्षा उनका पीछा पालने से लेकर कब्र तक करती है।”<sup>2</sup> इस प्रकार वर्तमान युग भी जहाँ इतनी प्रगति हुई है लेकिन महिलाएँ उतनी ही असुरक्षित दिखाई देती हैं।

### हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श :

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श एक अवधारणा है, जो नारी अस्तित्व को बनाए रखने एवं उसकी अस्मिता में अनेक प्रश्न उठाने का प्रयास करती है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की शुरुआत छायावाद से मानी जाती है।

'छायावाद' की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा की शृंखला की कड़िया नारी सशक्तिकरण का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। हालांकि हिन्दी के पुरुष लेखकों ने नारी समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान दिया है। प्रेमचंद से लेकर राजेन्द्र यादव तक अनेक लेखकों ने स्त्री केन्द्रित रचनाएं करने का प्रयास किया। लेकिन वह उस रूप में स्त्री मन को उद्घाटित करने में सफल नहीं हुए जैसे महिला लेखिकाएं कर पाई। हिन्दी साहित्य में नारी जीवन की अन्तर वेदना को स्वाभाविक रूप से सबके समक्ष लाने वाले 1960 के दशक में जिन लेखिकाओं नाम का नाम लिया जाता है, वो हैं— उषा प्रियम्बदा, कृष्ण सोबती, मन्नू भण्डारी और शिवानी। 1980 तक महिला लेखिकाओं की संख्या में काफी इजाफा हो गया। जिसमें ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, मणिक मोहनी, मृदुला गर्ग, मंजुला भगत, मृदुला सिन्हा, मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, दिप्ती खण्डेलवाल, कुसुम अंचल, इंदू जैन, प्रभा खेतान आदि नाम हैं।

इस प्रकार स्त्री विमर्श का प्रारम्भ ही स्त्री स्वतन्त्रता है। जब महिलाओं ने इस बात को महसूस किया कि उसे भी स्वतन्त्र जीने एवं अन्याय के प्रति लड़ने की क्षमता रखती है, तभी साहित्य में उसका पर्दापण हुआ। डॉ. संदीप रणभिरकर ने नारी स्वतन्त्रता पर विचार करते हुए नारी विमर्श को इस प्रकार परिभाषित किया : "स्त्री—विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषण और दमन का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतन ने ही स्त्री—विमर्श को जन्म दिया।"<sup>3</sup>

इस प्रकार स्त्री वेदना को स्त्री विमर्श की जन्मदात्री माना जा सकता। हिन्दी साहित्य में

विविध विधाओं—कविताओं, कहानी, उपन्यास आत्मकथा आदि के माध्यम से स्त्री विमर्श का उद्घाटन हुआ है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी—चेतना प्रारम्भ से ही देखी जा सकती है। 'भाग्यवती', देवरानी—जेठानी आदि प्रारम्भिक उपन्यासों में स्त्री चेतना देखने को मिलती है। उषा प्रियम्बदा का उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' (1960 के दशक में प्रकाशित) में नारी का एक नया रूप देखने को मिलता है। इसी प्रकार अन्य साहित्यिक विधाओं में स्त्री विमर्श मुखर रूप में इंगित हुआ है।

इसी प्रकार पुरुष लेखकों में "नारी—विमर्श" हर उपन्यासकार के उपन्यासों में मिलता है, हिन्दी के प्रगतिशील उपन्यासकार के रूप में जाने—जाने वाले बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में नारी एक नये रूप में देखने को मिलती हैं। इनके 'उग्रतारा' उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र उगनी विधवा होने के बावजूद दूसरा विवाह कामेश्वर के साथ करती है। लेकिन इन दोनों को साथ नहीं रहने देकर उगनी का विवाह अधेड़ उम्र के जेलर के साथ विवाह कर दिया जाता है। वह अनमेल विवाह को स्वीकार नहीं कर पाती, यहाँ तक की वह वहाँ से भाग जाती है। कामेश्वर के साथ सुख पूर्वक रहने लगती है। जो कि नारी की नवीन चेतना का स्पष्ट चित्रण है। साथ ही इनके अन्य उपन्यासों जैसे—'रतिनाथ की चाची', 'कुंभीपाक' आदि में स्त्री विमर्श के सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों ने अपने रचनाओं में नारी—विमर्श के चित्र उकेरने के प्रयास किए हैं।

कथा सम्राट प्रेमचंद के उपन्यास कहाँ—न—कहाँ नारी विमर्श को निरूपित करते हैं। इनके कथा साहित्य में दहेज प्रथा, बाल विवाह, अनमोल विवाह, वेश्यावृत्ति, विधवा—विवाह आदि को प्रदर्शित करते हुए नारी का सामाजिक,

राजनैतिक, धार्मिक आदि दृष्टियों से होने वाले शोषण को प्रदर्शित किया है। प्रेमचंद के निर्मला, गबन, गोदान, कर्मभूमि आदि उपन्यासों में स्त्री के प्रति होने वाले अत्याचारों का विरोध हुआ है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में नारी—विमर्श की बात करना अपने—आप में एक बहुत बड़ा मुद्दा है। नारी चेतना का स्वर अधिक मुखर होने लगा है। आज नारी पुरुष का सानिध्य तभी तक स्वीकार करती है। जब तक उसे स्वतन्त्र रखा जाता है। जैसे उसकी स्वतन्त्रता पर ऑच आनी प्रारम्भ होती है। वह विरोध करने की स्थिति में है।

हिन्दी की प्रसिद्ध आँचलिक लेखिका गौरा पंत 'शिवानी' की कहानियों में नारी विमर्श अपने प्रकृत रूप में दिखाई देता है। इनके 'जिलाधीश' कहानी में सभी अधिकारों से पूर्ण सुमन जो कि एक जिलाधिकारी है। फिर भी वह रणधीर दवारा बलात्कार की शिकार होती है। इसमें यह स्पष्ट है कि नारी चाहे किसी भी पद पर पहुंच जाए लेकिन पुरुष की उसके प्रति दृष्टि अच्छी नहीं होती है। 'एक बार उसने सुमन को एक झटके से खींचकर छाती से लगा लिया। एक पल को सुमन बुत सी खड़ी रही, फिर दूसरे ही क्षण उस तीक्ष्णनखा साहसी लड़की ने उसे नोच—नोचकर दूर धकेल दिया।'<sup>4</sup> इनके कहानियों— 'चांचरी', 'पाथेय', 'दो बहनें', 'मणिलाल की हंसी', 'फिरबे की? फिरबे', 'प्रतिशोध', 'लाल हवेली' आदि कहानियों में नारी जीवन अपने प्रकृत रूप में उभरा है।

#### सारांश :

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य ने युगों से समाज के उपेक्षित पक्षों को सबके समक्ष लाने की महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समाज की आधी आबादी अर्थात् महिलाएं सदा अपने अस्तित्व के लिए जदोजहद करती दृष्टिगत हुई हैं। साहित्य ने इस आधी

आबादी को उसके अधिकारों से रुबरु कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श पर दृष्टि डाली जाए तो समकालीन हिन्दी से या महादेवी वर्मा के साहित्य से स्त्री स्वतंत्रता के स्वर गुंजित हुए माने जाते हैं। लेकिन इससे पूर्व भक्तिकाल में मीरा के पदों से ही स्त्री विमर्श के बीज पड़ चुके थे। जो महादेवी वर्मा के साहित्य से लेकर उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, कृष्णा सोबती आदि लेखिकाओं के प्रयासों से एक वृक्ष के रूप में पल्लवित हुए। हलाँकि पुरुष लेखकों ने भी स्त्री के केन्द्र में रखकर साहित्य रचना की। लेकिन एक स्वतन्त्रता की जो आह स्त्री लेखिकाओं के साहित्य में देखने को मिलती है, पुरुष लेखकों के साहित्य में उसका अभाव ही है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की भूमिका को निरूपित करने का प्रयास किया गया है। जिससे साहित्य में समय—समय पर स्त्रीयों के प्रति दृष्टिकोण में आए परिवर्तन एवं परिवर्तन की आवश्यकता का अध्ययन किया जा सके।

#### संदर्भ सूची :

1. डॉ. ए. पी. शर्मा : प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम संस्करण 1986
2. मनव विकास रिपोर्ट : मौर्य राशि एवं नुपुर कुकरेती द्वारा संकलित एवं "संपादित सुरक्षा के दायरे" भाग—1 प्रकाशक (सहयोगिनी ट्रस्ट छतरपुर 1900 अलिखित)
3. पंचशील शोध—समीक्षा, पृ. 87
4. जिलाधीश, पृ. 71

• • • • •

## भक्तिकाल की आधुनिक लोक जागरण की प्रसंगिकता

डॉ. चन्दन कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)

राजकीय महाविद्यालय, बाराखाल संत कबीर नगर

डेविड लॉरेंज ने लिखा है तूथ ब्रश से लेकर एटम बम तक, फासिज्म से लेकर लिबरल डेमोक्रेसी तक, अली अकबर खान से लेकर हिंदी फिल्म संगीत तक, हिंदुत्व से लेकर धर्मनिरपेक्ष अनीशवरवाद तक, अलकायदा से लेकर अमेरिकी साम्राज्यवाद तक, शहरी छुटपुट हिंसा से लेकर अमेनेस्टी इंटरनेशनल तक।

आधुनिकता को यदि सर्वज्ञ ही अवधारणा मान लेते हैं तो वर्तमान में उपस्थित प्रत्येक अवधारणा, सोच चिंतनबोध, दृष्टिवस्तु को आधुनिक मानना पड़ेगा। मध्ययुगीनता व आधुनिकता को सिर्फ समय के विभाग के रूप में नहीं बल्कि बोध के रूप में स्वीकार करना ज्यादा श्रेयस्कर है। सामाजिक वर्गों की सीमाओं के मिटने तथा ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर प्रस्थान सामाजिक गतिशीलता, ज्ञान विज्ञान के विस्तार व सामंती मूल्यों के पतन में हम आधुनिकता को देखे तो इस की शुरुआत भक्तिकाल से ही शुरू हो जाती है— “तेरहवीं—चौदहवीं शताब्दी में सामन्ती समाज का ढाँचा ढीला पड़ने लगा था। वर्णव्यवस्था शिथिल हो रही थी और लोग अपने खानदानी पेशे छोड़ कर नए पेशे अपनाने लगे थे। तुर्कों के हमलों से यह ढाँचा और कमजोर पड़ा, हालाँकि उसे तोड़ने वाली ताकतें उस के भीतर पैदा हो रही थी।”<sup>1</sup>

“जिसे परुषोत्तम अग्रवाल” अकथ कहानी प्रेम की में देशज आधुनिकता के रूप में देखते हैं उस मध्य काल के बारे में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि “खुसरो और विघापति के काल में हिन्दी जातीय निर्माण की प्रक्रिया के साथ आधुनिकता, नवजागरण और पूँजीवाद का विकास

आ चुका था। उनके अनुसार पन्द्रहवीं—सोलहवीं सदी में एक वैकल्पिक, प्रगतिशील और जाति निरपेक्ष वैश्वनवता मौजूद थी उन्होंने 1400—1650 ई. के बीच उत्तर भारत में विकसित हो रही आधुनिकता की रोचक तुलना 1650 से 1790 के बीच के यूरोप से की है वास्तव में मध्यकाल के “कबीर, जायसी, सूर और तुलसी का युग लोकजागरण का युग है यह जागरण पश्चिमी एशिया के कई देशों के लोग जागरण से जुड़ा हुआ था”<sup>2</sup> जो काम पश्चिम में रेनेसां कर रही थी वह काम मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन कर रहा था। भक्ति आंदोलन ने वर्ग, जाति, धर्म और सम्प्रदाय से परे जाकर मनुष्य सत्य की उद्धोषणा की। “मानुष प्रेम भएउ बैकृष्णी। नाहिंते काहछारए कमूठी” कह कर मानवीय प्रेम को केंद्र में स्थापित किया और शास्त्र के बंधनों को उतार फेंका। तार्किकता व अनुभव उसके लिए मुख्य हो गया— “तू कहता कागद की लेखी । मैं कहता आँखिन की देखी”<sup>3</sup> और समान्तवादी परिवेश में जहां एक आदमी का कहा ब्रह्म सत्य है और किया गया अनुसरणीय, चाहे वह कितना भ्रष्ट हो। कालदर्शी भक्त कवियों ने ऐसे सामन्तवादी मूल्यों के विरोध में अपनी कलम को और पैना किया, लोकमंगल को केंद्र में लाकर जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह विस्तृत और प्रबल होता गया प्रेम। प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने ला कर भक्त कवियों ने और मुसलमानों दोनों को मनुष्य सामान्य रूप में दिखाया और भेद भाव के दृष्टियों को हटाकर पीछे कर दिया।<sup>4</sup> और मनुष्य की सामान्य भावना

को आगे करके निम्नश्रेणी के जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। आत्मकल्याण और लोककल्याण करने वाले कर्मों की ओर जनता को भक्ति कवि लेगए इसीलिए भक्तिकाल को रामविलास शर्मा लोकजागरण के रूप में देखते हैं। आचार्य रामचंद्रशुक्ल इस लोक जागरण की परंपरा में खुसरो, विधापति, नरोत्तमदास, रहीम, सेनापति आलम, घनानंद को भी रखते हैं और लोक जागरण की निरंतरता में ही प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान व प्रमुखतः तृतीय उत्थान की चर्चा 'लोकजागरण और आधुनिक काव्य' में करते हैं, "तृतीय उत्थान में आ कर परिस्थिति बहुत बदल गयी। आंदोलनों ने सक्रिय रूपधारण किया और गांव—गांव राजनीतिक और आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगायी गयी। सरकार से कुछ मांगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही 'स्वतंत्रता देवी की वेदी पर बलिदान' होने को प्रोत्साहित करने में लग गयी। हम देख सकते हैं कि भक्तिकालीन लोकजागरण में रीतिमुक्त श्रृंगार है, सूफियों की प्रेममार्गी साधना है, तुलसीदास की भक्ति है, कबीर की जनपक्षधरता है और रहीम के वचन है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तक का साहित्य उसी लोकजागरण का अगला विकास है जहां तक मध्यकालीन भक्तिकाल के कवियों के श्रीपक्ष व दलित अस्मिता की बात है वहां भी एकांगी नजरिए से देखने के बजाय हमारा नजरिया अहित कर अनुपयोगी तत्त्वों की छटाई पीलेपत्तों और सूखी डाली की तरह कर के उसके स्वस्थ विचारों के अनुकरण का होना चाहिए प्रेमाख्यान अक काव्य परंपरा के सूफी कवि जायसी पद्मावती के रूप में एक यूरोपिया गाढ़ते हैं पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की गुलामी के खिलाफ लड़की के जन्म के लिए अवतार शब्द का प्रयोग करते हैं— "पद्मावति कन्या ओतारी" मीराबाई अपने समय की

आधुनिक विचारों की वाहक हैं वो सही नहीं होती राजतंत्र, पुरुषसत्तात्मक समाज और परंपरा से विद्रोह करते हुए कृष्ण की भक्ति में लीन होते हैं उन से प्रेम करती हैं राजदरबार राजमहल की चौखट लाँघ कर मंदिर में आम जन के बीच बैठ कर भजन गाती हैं।

आज हम खुद को आधुनिक कहते हैं परंतु स्त्रियों की स्थिति आज भी दोयम दर्जे की बनी हुई हैं, पुत्री का जन्म दुख का विषय बना हुआ है वहीं आज से पाँच सौ साल पहले पद्मावती के पैदा होते परमात्मा—पिता और प्रजा में असीम उल्लास का भाव जायसी ने दिखाया—“पाँच वारिसम है सोबारी। दीन्ह पूरान पढ़ै बैसारी”<sup>5</sup> कह कर स्त्री शिक्षा पर बल देते हैं। “दुख की बात है कि आज भी हमारे समाज का एक बड़ा तब का जायसी की सोच से कहीं पीछे है और खुद को आधुनिक कहता है।”

सूर की गोपिया तो उस सामन्ती मानसिकता के खिलाफ खुली बगावत है और उनका काव्य प्रेम की शाश्वत कहानी कहता है। मीरा का काव्य ही नहीं अपितु जीवन भी राजसत्ता, सामन्ती बंधन के विरुद्ध विद्रोह रहा जो आज भी सामन्ती मानसिकता के लोगों की आँखों में आँखें डाल कर कहता है— “अपने घर का पर्दा कर लो। मैं अब लाबौराणी। आज की अर्थव्यवस्था और समाज को देखकर कवितावली की पंक्ति आज भी हठात दो ध्यान में आ जाते हैं— खेती न किसान को भिखारी को न भीक भली, बनिक को बनी जन चाकर को चाकरी।”<sup>7</sup>

हम आधुनिक तो बहुत हुए प्रगति भी बहुत की पर, आज भी हमारे किसान आत्महत्या को मजबूर है, सत्ता का शोषण जारी है, पूरी दुनिया आतंक और हिंसा के जद में है, ऐसे में जो रामराज्य का यूरोपिया तुलसी ने खड़ा किया था वह क्या आज प्रासंगिक नहीं है। जहां अल्प मृत्यु नहिं कवनि उपीरा। सब सुन्दर सब

बिरुजसरीरा” की स्थिति हो जहाँ एक राजा सत्य की रक्षा प्रिय पुत्र को वनवास देकर वचन की रक्षा प्राण देकर करता है। “राखेउ उराव सत्यमोहि त्यागी। तनुपरि हरेउ प्रेमपनु लागी ।”<sup>8</sup>

एक ऐसी प्रजा जो राजा के प्रेम और दुख में डूबी हुई है, एकभाई जो सब कुछ अपने बड़े भाई के चरणों में सौंप दिया है एक पत्नी जो राजसी सुख त्याग कर अपने पति के कर्म, सुख-दुख में सहभागी है और एक सेवक जिसे ‘राम काज कीन्हें बिनु मोहिक हाँ विश्राम’ और एक रामजिन से’ खरो है कौन ?”<sup>9</sup>

विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना बिल्कुल तर्कसंगत है कि “राम राज तुलसी का सपना है जिसे वे अपनी समकालीन दुर्व्यवस्था अर्थात् कलयुग को तोड़कर स्थापित होते देखना चाहते थे। दुखद है कि यह दुर्व्यवस्था बदस्तूर जारी है। लोक की चिंता इन कवियों के भी तरगह रेस्तर पर धंसी हुई थी इसलिए उन समस्याओं पर सोच सके, जिनसे उस समय की जनता पीड़ित थी और आज भी है और इसीलिए उनकी कविता आमलोगों के दुखों को व्यक्त कर पायी और निरंकुशलोलुप सत्ता के खिलाफ लड़ने का हथियार बन गयी। जहाँ तक मध्यकाल की प्रासंगिकता का सवाल है उसके लिए इतना ही कहना काफी है कि हिंदी साहित्य का वह स्वर्ण काल रहा है। कबीर हमारे साथ आज भी खड़े नजर आते हैं, तुलसी का काव्य तो उत्तर भारत की जनता का कष्टहार है ही, जायसी, सूर, मीरा, घनानंद, बोधा, ठाकुर और पता नहीं कितने सर्जक इसी युग के हैं जिनका काव्य पढ़ते समय हम डूब जाते हैं। वह हमारे समकालीन लगते हैं और संभव तरु कभी-कभी हमारे हाथों में भी लुकाठी आ जाती है।

आज भी विचार धरात्मक उठा पटक और सामाजिक वितंडावाद के बीच अनेक बार

कबीर की बाणियों के हवाले दिए जाते हैं। उन्हें आज के सर्वण हिंदूवादी आग्रहों तथा मुस्लिम कट्टरपंथ से लड़ने के लिए बुलावा दिया जाता है। “हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध” कहने की ताकत आज कितने लोगों में है। विज्ञान की असाधारण प्रगति के बावजूद आज भी मनुष्य रंगों और जातियों में बँटा हुआ है। उसके बीच धर्म की दीवारें खड़ी हुई हैं। सांप्रदायिक द्वेष और वर्ग संघर्ष से ग्रस्त हैं। ऐसे समय में कबीर की वाणी आज भी रोशनी दिखा रही है। भक्तिकाल के साहित्य का एक बड़ा हिस्सा आज भी प्रासंगिक और कालजयी बना हुआ है।

### **संदर्भ सूची :**

1. लॉरेंजन डेविड, आलोचना सहस्त्राब्दी अंक छियालीस, पृष्ठ-12
2. शर्मा डॉ. राम विलास, भारत की भाषा समस्या, पृष्ठ-84
3. शर्मा डॉ. राम विलास, शंभूनाथ, साहित्य अकादमी, पृष्ठ-7
4. शर्मा डॉ. राम विलास, लोक जागरण और हिंदी साहित्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-11
5. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोक जागरण और भक्ति काव्य, पृष्ठ-65
6. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोक जागरण और आधुनिक काव्य, पृष्ठ-88
7. शास्त्री विश्वनाथ, आलोचना आधुनिकता की चुनौती और तुलसीदास, पृष्ठ-38
8. सिंह श्री भगवान, पदमावत, नारी श्रेष्ठता का प्रथम काव्य, कसौटी अंक-8, पृष्ठ-25
9. त्रिपाठी विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, पृष्ठ-39

देश का उद्धार विलासियों द्वारा नहीं हो सकता, उसके लिए सच्चा त्यागी होना आवश्यक है।

कलम की ताकत दुनिया में सबसे बड़ी है, चाहे एक रोटी कम खाओ, लेकिन बच्चों को जरूर पढ़ाओ।

— डॉ. अंबेडकर

लिखते तो वह लोग हैं, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है। जिन्होंने धन और भोग—विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया, वह क्या लिखेंगे ?

— प्रेमचंद

आप जैसे विचार करेंगे, वैसे आप हो जायेंगे, अगर अपने आप को निर्बल मानेंगे तो आप निर्बल बन जायेंगे, और यदि जो आप अपने आपको समर्थ मानेंगे तो आप समर्थ बन जायेंगे।

— विवेकानंद

---

---

### सुविचार

‘संतोष का वृक्ष कड़वा है, लेकिन इस पर लगने वाला फल मीठा होता है।’

आपके नकारात्मक विचार आपको, आपके दुश्मन से भी ज्यादा नुकसान पहुंचा सकते हैं।

— गौतम बुद्ध

## सिनेमा और समाज : अंतर्सम्बन्ध

डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)

विद्यासागर कॉलेज फॉर वीमेन, कोलकाता

आज का युग विज्ञान का युग है और निरन्तर उन्नति के पथ पर है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान के आविष्कारों की धूम मची है। नित्य नए आविष्कार करने में होड़—सी पैदा हो गई है। आज जीवन का कोई काम बाकी नहीं बचा है, जिसमें सुखमय बनाने के लिए वैज्ञानिकों ने नए—नए आविष्कार किए। मनोरंजन के क्षेत्र में तो विज्ञान ने अनेक सुविधाएं प्रदान की है, उन्हीं आविष्कारों में से एक ज्वलंत प्रतीक है—चलचित्र अर्थात् सिनेमा।

वास्तव में सिनेमा आज हमारे दैनिक जीवन का प्रमुख अंग बन गया है। दिन भर के परिश्रम से थकी—मांदी लोगों के लिए सिनेमा से बढ़कर मनोरंजन का सस्ता और सुगम साधन दूसरा नहीं है। चाहे वह धनी हो या निर्धन, चाहे मालिक, मजदूर स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, स्कूल—कॉलेज के विद्यार्थी, दफतरों में काम करने वाले कलर्क, उच्च अधिकारीगण सभी लोगों की भीड़ से सिनेमा घर भरे रहते हैं। आज प्रायः सबके घरों में केबल का कनेक्शन है या प्रायः सबके हाथों में स्मार्ट फोन आ गया है। जिसके माध्यम से भी अपने खाली समय में सिनेमा का लुफ्त उठाते हैं। आज इसकी लोकप्रियता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

इतिहास को अगर देखें तो सिनेमा का आविष्कार अमेरिका के थोमस एल्वा एडिसन नामक व्यक्ति ने सन् 1860 में किया था। तबसे इसका प्रसार निरंतर बढ़ता गया है। आज विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में इसका बोलबाला है। कोई भी देश ऐसा नहीं है जहां सिनेमा ने अनन्य लोकप्रियता न प्राप्त की हो। भारत में सिनेमा के जन्मदाता

दादा साहिब फालके माने जाते हैं। उन्होंने सन् 1913 में पहली मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई थी। पहले सिनेमा मूक होते थे, परंतु सन् 1928 के बाद उनमें वाणी का भी प्रयोग हुआ। वाणी अर्थात् बोलती फिल्म 'आलम आरा' थी, जिसका निर्माण 1931 में मुम्बई में हुआ था। धीरे—धीरे सिनेमा इतना लोकप्रिय हो गया कि मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता जैसे महानगरों में सिनेमा घरों का जाल—सा बिछ गया। कालांतर में छोटे—छोटे शहरों, कस्बों और गाँवों में सिनेमा घर का होना, उनकी लोकप्रियता का प्रमाण देखा जा सकता है।

सिनेमा का संसार बड़ा विचित्र है और उसकी इस विचित्रता ने ही आज मानव मन को इतना अधिक आकर्षित किया है। हमारे जीवन में सिनेमा इतना अधिक प्रवेश कर जाएगा, शायद ही किसी ने यह सोचा होगा की शाम के समय में तो सिनेमा घर की खिड़की का दृश्य सचमुच किसी मेले के दृश्य से कम नहीं होता है। सिनेमा के टिकटों का मूल्य बड़ा दिये जाने पर भी सिनेमा घरों के बाहर टिकट लेने के लिए लम्बी कतार और खड़ी भीड़ में कोई परिवर्तन नहीं आया। सिनेमा घर के बाहर लगे 'हाऊस फुल' के बोर्ड से इसकी पॉप्युलरिटी का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। यदि सिनेमा 'हिट' हो तो टिकटों की 'एडवांस बुकिंग' यानी अग्रिम से ही ऑनलाइन द्वारा बुकिंग शुरू हो जाती है और कई सिनेमा घरों के बाहर टिकटें ब्लैक में ही बिकती हैं।

आज देश के सबसे बड़े उद्योगों में से फिल्म उद्योग भी बना हुआ है। करोड़ों की पूँजी

सिनेमा के निर्माण में लागत हुई है। लाखों लोगों के जीवन निर्वाह का यह साधन भी है और निर्भर भी। हमारे शिक्षित नवयुवक समाज के लिए तो सिनेमा व्यवसाय बड़ा तीव्र आकर्षक केन्द्र बना हुआ है। अनेक नवयुवक आज भी सिनेमा व्यवसाय में काम पाने के लिए मुम्बई, कोलकाता आदि जैसे महानगरों का धूल फॉकते हैं। वैसे फिल्म निर्माण में लाखों लोगों को रोजगार भी मिलता है। अनेक अभिनेता—अभिनेत्रियाँ अपनी कला का प्रदर्शन कर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार भी जीतते हैं।

सिनेमा मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन है। मनोरंजन के अन्य साधनों से जहां एक ही प्रकार का मनोरंजन होता है वहां सिनेमा द्वारा सभी प्रकार के मनोरंजन प्राप्त किये जा सकते हैं। जिन्हें संगीत प्रिय है, उनकी अभिलाषा भी सिनेमा द्वारा पूरी हो जाती है और जिन्हें नृत्य रूचिकर लगते हैं, उन्हें भी निराश नहीं होना पड़ता है।

सिनेमा मनोरंजन के साथ—साथ ज्ञानवर्धन का भी सर्वोत्तम साधन है। आँखों से किसी भी वस्तु को प्रत्यक्ष देखने पर उसे समझना बहुत सरल और सहज हो जाता है। भौगोलिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक आदि विषयों की जानकारी सिनेमा द्वारा सहज ही हो जाती है। सिनेमा द्वारा प्रकृति की अतुल सुषमा का आनन्द लिया जा सकता है। विशाल नगरों की सैर की जा सकती है। जीते जागते उपन्यास, कहानी, नाटक यहां पढ़े जा सकते हैं। सिनेमा केवल मनोरंजन ही नहीं शिक्षा का भी उत्कृष्ट साधन है। यदि सरकार जनता को कोई विशेष संदेश देना चाहती है, तो उस विषय पर एक वृत्तचित्र प्रस्तुत कर लिया जाता है। इस क्षेत्र में विदेशों में इसका बड़ा उपयोग हो रहा है। इतिहास, भूगोल, खगोल, स्वास्थ्य, जीव विज्ञान आदि विषयों की शिक्षा प्रदान करने में सिनेमा की

सहायता ली जा रही है। वहां किसी भी देश के रहन—सहन, वेश—भूषा, आचार—विचार, संस्कृति आदि का ज्ञान सिनेमा द्वारा किया जाता है। निःसंदेह विद्यार्थीगण जितना सरलता से सिनेमा के रूप में किसी विषय को समझ सकते हैं, उतना पुस्तकों के अध्ययन से नहीं कर सकते। इस प्रकार इस क्षेत्र में सिनेमा जगत् विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। शिक्षा के साथ—साथ सिनेमा द्वारा देशोन्नति के कार्यों को जनता के सामने रखा जा सकता है। राष्ट्रीय और समाज सुधार प्रधान फिल्मों द्वारा देश में जागृति उत्पन्न की जा सकती है।

आज सिनेमा समाज सुधार के रूप में पीछे नहीं रहा है। हमारे देश की अधिकांश लोग अशिक्षित और अंधविश्वास हैं। वह अपने हित की बातें दूसरे को समझाए जाने पर भी कई बार समझने में असमर्थ रहती है। ऐसे में केवल सिनेमा का सहारा लिया जाता है। हमारे देश में नैतिकता से परिपूर्ण अनेक फिल्मों का निर्माण किया गया है। जागृति, अछुत कन्या, तपस्या, पुकार, लिजेण्ड ऑफ भगत सिंह, मणिकर्णिका, टॉयलेट : एक प्रेम कथा आदि। ये फिल्म सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को लेकर बनाए गये हैं और उनका समाधान भी इन फिल्मों में प्रस्तुत किया गया है। फिल्मों के माध्यम से खेती के आधुनिकतम तरीके, वैज्ञानिक उन्नति, चिकित्सा के क्षेत्र में हुई उन्नति, बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिए सरकार की 'परिवार नियोजन' के विषय में लघु सिनेमा (शॉर्ट फिल्म) तैयार करती है, जिसे अशिक्षित लोग भी बहुत जल्द ग्रहण कर लेता है।

व्यापारीगण अपने वस्तुओं के विज्ञापन प्रचार कार्य हेतु सिनेमा का भी सहारा लेता है। विज्ञापन फिल्म के प्रारम्भ, मध्य और अंत में दिखाए जाते हैं। व्यवसायी वर्ग का उद्देश्य होता है कि लोग उनके माल को देखें और उसे

खरीदने के लिए लालायित हों, जिससे उनका प्रचार और आर्थिक लाभ हो।

हिन्दी भाषा व अन्य भाषा के प्रचार और प्रसार का काम भी सिनेमा के माध्यम से भी करते हैं। ऐसे में फिल्म प्रोड्यूसर को चाहिए कि वह भाषा की शुद्धता पर पुरा ध्यान दें। आज देशी और विदेशी सर्वश्रेष्ठ फिल्मों का भी हिन्दी में रूपांतरण किया जा रहा है।

वैसे, आज के इस पेंडामिक दौर में इंटरनेट ने हमारी जिंदगी में बहुत से बदलाव किये हैं। इंटरनेट और कई सारी आधुनिक टेक्नोलॉजी ने हमारे बहुत से काम करने के तरीकों में बदलाव ला दिये हैं। विशेषकर ओ.टी.टी. के प्लेटफॉर्म ने मनोरंजन के तरीके को काफी बदल दिया है। आजकल बहुत से ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म काफी लोकप्रिय हो रहे हैं जैसे एमेजन प्राइम, नेटफिलक्स जैसे ऐप्स अपने खुद के ओरिजिनल कंटेंट या फिल्म सीरीज बना रहे हैं, जिसके जरिए कंटेंट को विभिन्न प्रकार के डिवाइस जैसे स्मार्ट टी.वी., स्मार्ट फोन, टैब आदि पर देखा जा सकता है। आज कई फिल्में थिएटर की जगह ओ.टी.टी. प्लेटफॉर्म पर रिलीज की जा रही है। जिसके चलते कई सारे ओ.टी.टी. ऐप की लोकप्रियता वेब सीरीज के कारण काफी तेजी से बढ़ी है जो मनोरंजन के लिए आज की युवा पीढ़ी की पहली पसंद बन गए हैं।

सिनेमा जहां अपने समाज के साथ इतनी उपयोगिता लिए हुए हैं वहां उसके साथ कुछ हानियां भी जुड़ी हैं। जैसे—जैसे हमारे जीवन में सिनेमा प्रवेश करता गया, वैसे—वैसे हमारे समाज में उसका बुरा प्रभाव भी बढ़ता गया। जिसके कारण समाज में उसका विरोध भी बढ़ा। यह विरोध अनावश्यक कारण समाज में उसका विरोध भी बढ़ा। यह विरोध अनावश्यक नहीं है, क्योंकि इससे नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ। कुछ

लोग अपने पसन्दिता अभिनेता और अभिनेत्रियों की फोटो अपने कमरे की दिवार में लगा लेते हैं। फिल्म देखकर उनके डायलॉग और एकिटंग की नकल करने लग जाते हैं। फिल्म कम्पनियां धन के लोभ से प्रायः गन्दे और अश्लील चित्रों का प्रदर्शन अधिक करती हैं। इससे लोगों की कुत्सित रुचि और गन्दी भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। जिसके कारण सामाजिक आचरण पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। चोरी, डकैती, बलात्कार और हत्या, हेराफेरी ने नये—नये रूपों का प्रचार कर समाज के लिए अभिशाप बन गया है। नित्य प्रतिदिन सिनेमा देखने की लत पड़ जाने के कारण अपने समय और पैसे दोनों का अपव्यय हो जाता है। अधिक सिनेमा देखने के कारण आखों की ज्योति भी मंद पड़ जाती है। हिरो—हिरोईन बनने के जुनून में अनेक युवक—युवतियां अपने घर छोड़कर मुम्बई, कोलकाता जैसे शहरों में भाग कर जाते हैं। हाँ, कुछ लोग तो अपने लक्ष्य में सफल हो जाते हैं, लेकिन बाकी का जीवन एकदम नष्ट हो जाता है। इस 'प्रेम—संस्कृति' कारण 'प्रेम—संस्कृति' ने जन्म ले लिया है। इस 'प्रेम—संस्कृति' से ही 'बॉय—फ्रेण्ड' और 'गर्ल फ्रेण्ड' जैसे शब्द का प्रचलन भी आज हो गया है। इस रूप में सिनेमा ही हमारे नैतिक, आर्थिक, शारीरिक, सांस्कृतिक—सामाजिक पतन का कारण बन गया है।

**वस्तुतः** स्पष्ट है कि सिनेमा मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालता है। यह मनोरंजन का सबसे सस्ता साधन तो है ही, लेकिन ढाई—तीन धंटों के सिनेमा को देखकर लोग सांसारिक जगत् को छोड़कर एक दूसरे जगत् में विचरण करने लग जाता है। ऐसे में निर्देशकों को चाहिए कि वे समाज का विकृत करने वाले दृश्य को न दिखाए क्योंकि मनुष्य बुरी बात को ही जल्दी और ज्ञानवर्धक बात में

देर से ग्रहण करता है। यह सच है कि भारत सरकार ने सिनेमा के अवांछनीय दृश्यों पर रोक लगाने के लिए एक 'सेंसर बोर्ड' का गठन किया है, लेकिन फिल्म-निर्माता उन्हें अनेक तर्कों द्वारा संतुष्ट कर अश्लील व अवांछनीय दृश्यों को नहीं काटने देता। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज राष्ट्रीय जीवन में फिल्म-उद्योग ने प्रमुख स्थान बना लिया है। हमारा कर्तव्य है कि राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए हम सिनेमा का उपयोग सही दिशा में करें। ऐसे सिनेमा का निर्माण करें जो समाज के चरित्र को ऊँचा उठाने वाले और देशोपयोगी हो। आशा है, आगामी दिनों में फिल्म निर्माता अच्छी फिल्मों का निर्माण करके और लोग उसका सदृप्योग करते हुए स्वच्छ मनोरंजन द्वारा भारतीय समाज की मूल्य की रक्षा कर महाशक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण करेंगे।

•••••••••••••

आस्था वह पक्षी है जो सुबह अंधेरा होने पर भी उजाले को महसूस करती है।

— रविन्द्रनाथ ठाकुर

महान् व्यक्ति महात्माकांक्षा के प्रेम से बहुत अधिक आकर्षित होते हैं।

केवल बुद्धि के द्वारा ही मानव का मनुष्यत्व प्रकट होता है।

सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होता है जो अपने कर्तव्य पथ पर अविचल रहते हैं।

— प्रेमचंद

मनुष्य के अज्ञान की मार मनुष्य ही तो सहते हैं।

— निराला

अगर आप दूसरों के लिए दिया जलाते हैं, तो यह आपके रास्ते को भी रोशन कर देता है।

जीवन वह नहीं जो हमें मिला है, जीवन वह है जो हम बनाते हैं।

— गौतम बुद्ध

## बंकिमचंद्र : राष्ट्रीयता का उद्घोषक

डॉ. चक्रधर प्रधान

हिन्दी विभागाध्यक्ष, मोहसीन कॉलेज

“कर्ता अपने सत्कर्म द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र में मनुष्य के सद्वृत्तियों के आकर्षण का एक शक्ति केंद्र का उदय हो जाता है। जिस समय में किसी ऐसे ज्योतिष्मान शक्ति केंद्र का उदय होता है, उस समाज में भिन्न-भिन्न हृदयों से शुभ भावनाएं मेघ खंडों के समान उठ कर उस की ओर अग्रसर होता है। उस समय में भिन्न-भिन्न हृदयों से शुभ भावनाएं मेघ-खंडों के समान उठ कर उस की ओर अग्रसर होता है।” ‘श्रद्ध भक्ति निबंध में’ कथित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि बंकिमचंद्र के रूप में बंग समाज में ऐसे ज्योतिष्मान शक्ति केन्द्र का उदय हुआ था, जिसकी ओर अगणित शुभभावनाएं अद्भावों होती आ रही है। एक स्पष्ट के रूप में उनका रचना कर्म आज भी आकर्षण का केन्द्र है। भारत वर्ष में ऐसा कौन होगा जो ‘वंदेमात्रम्’ सुनकर आकर्षित न हुआ होगा ? यह आकर्षण ही प्रकारांत से बंकिमचंद्र के प्रति आकर्षण है।

बंगाल के इस सपूत का जन्म जून 1838 ई. को उत्तर 24 परगना जिले के काठाल पाड़ा के एक संपन्न ब्रह्मण परिवार में हुआ था। माता दुर्गा देवी और पिता यादव चंद्र चटर्जी की इस संतान को परिवारिक संस्कार वहीं मिला। पिता डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप मेदनीपुर में कार्यरत होने के कारण बंकिमचन्द्र का प्रारंभिक शिक्षा वही पर हुई। उनकी उच्च शिक्षा ‘हुगली कॉलेज’ (वर्तमान हुगली मोहिसिन कॉलेज एवं प्रेसिडेंसी विश्वविद्याल) में हुई थी। ग्यारह वर्ष की आयु में उनकी शादी हुई थी किंतु शादी के पांच वर्ष बाद उन्हें पत्नी वियोग का कष्ट झेलना पड़ा था। बाद में उनका दूसरा

विवाह राजलक्ष्मी के साथ हुआ। गृहस्थ जीवन जीते हुए भी उन्होंने पढ़ाई का क्रम और खेलकूद जारी रखा। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण दो स्नातक के छात्र में एक थे। यह तथ्य तो गर्व का अनुभव करता है। वे सन् अद्वारह सौ सत्तावन ई. (1857) में बी.ए. की उपाधि पाने वालों भारतीय छात्र थे। बाद में उन्होंने कानून (Law) की डिग्री भी हासिल कर ली थी। अपनी मातृभाषा बांग्ला के ली थी। अपनी मातृभाषा बांग्ला के साथ गहरा लगाव एवं संस्कृत के प्रति विशेष रुचि रखने वाले बंकिमचंद्र का अंग्रेजी भाषा पर अधिकार था। इसका प्रमाण उनका पहला उपन्यास ‘राजमोहन्स बाइफ’ है। कहा जा सकता है कि एक अंग्रेजी अध्यापक के डांटने पर उनकी अंग्रेजी के प्रति रुचि नहीं रही है। संभव है कि इस घटना के बाद उन्होंने बांग्ला में लिखना प्रारंभ किया होगा। उनका अधिक समय स्वाध्याय से बीता था। संस्कृत के सौंदर्य से वे विशेष प्रभावित थे। इस कथन की पुष्टि ‘वंदेमात्रम्’ गीत से हो जाती है। बी.ए. पास होते ही उनकी डिप्टी क्लेक्टर का पद मिला, जिसे अपने पिता के कहने पर ही उन्होंने स्वीकार किया था। उन्होंने 32 वर्ष सरकारी नौकरी की थी और अंत तक स्वाभीमानी ही बने रहे। इस इंबंध में कई प्रसंग पाए जाते हैं, जिसमें उनके स्वाभीमानी रूप दिखाई देता है। सरकारी नौकरी पर रहते हुए उन्होंने बड़खोली गांव पर धावा बालने वाले अंग्रेज लुटेरों का दमन किया था। उन्होंने उनमें से 25 को काला पानी और एक फांसी की सजा तक सुनायी थी। वे अपने योग्यता एवं सूझबूझ से हमेशा अंग्रेजों की अनीतियों का विरोध करते थे। अपने

निडर और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के कारण वे कंपनियन आर्डर ऑफ इंडियन अंपायर भी बनाए गए थे। वे सरकारी पदों पर रहकर कर्नल इफिन जैसे अधिकारी को भी परास्त कर दिए थे। काले भारतीयों का अपमान करने वाले कर्नल इफिन को उनसे माफी तक मांगनी पड़ी थी सरकारी सेवा में रहकर राष्ट्रीय जागरण का साहित्य सृजन करना बंकिमचंद्र जैसे स्वाभिमानी और निडर व्यक्तित्व के लिए ही संभव था। उनके व्यक्तित्व को चरितार्थ करने वाला यह छंद देखने योग्य है। 'बी.ए. पास डिपटी, कलेक्टर संभाला पदभार। ग्यारह में शादी, मिली नौकरी करके बीस पार "राष्ट्र प्रेम अलख जगाने लगे युवा बंकिम हो। सबसे अलग कह चक्रधर कविराय यह बात है खास। सन् सत्तावन में भारत पुत हो गया भी ए पास।"

साहित्यकार के रूप में बंकिमचंद्र अद्वतीय हैं। उन्हें 'साहित्य समाट कहकर बंग सम्मान देता है। बांगला के अग्रिम पंक्ति के साहित्यकार में उनका स्थान सर्वप्रथम है। बंगाल की उर्वरा भूमि ने उन्हें भाषागत, साहित्यिक एवं वैचारिक धरातल प्रदान किया, जिसके चलते उनकी सर्वेदना का विकास हुआ है। बंगाल के लोग उन्हें आदर से बंकिम बाबू पुकारते हैं और यही नाम अन्य भारतीय भाषा के लेखक भी प्रयोग करते हैं।' उनके नाम को लेकर यह भी तथ्य पाया जाता है कि "बांगला भाषा में बंकिमचंद्र का अर्थ होता है 'दूज का चांद' दूज का चांद दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। धरती चांदनी से जगमगाने लगती है। बंकिमचंद्र का यश भी दूज के चांद रूप दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। माता-पिता की ऐसी ही अभिलाषा थी। इसलिए उनका नाम बंकिमचन्द्र ही रखा गया। "यह कथन भले ही अनुमान लगता है पर उसमें छिपा अभिप्राय सही प्रतीत हो रहा है। क्योंकि इनका यश बंगाल के प्रख्यात उपन्यासकार

गद्यकार कवि और पत्रकार के रूप में फैलता ही गया ये ऐसे भारतीय रचनाकार हैं, जिनका प्रभाव दूर-दूर तक अन्य भाषाओं के साहित्य पर पड़ा है। प्रायः सभी उपन्यास लेखकों ने इनसे प्रभाव ग्रहण करते हुए अपनी भाषा के साहित्य को समृद्ध किया है। हिन्दी समेत पूर्व भारतीय भाषाओं में 'उपन्यास' शब्द ग्रहण कर लिया गया है। उपन्यासकार के रूप में वे भारतीय लेखकों में अग्रण्य उन्होंने 15 उपन्यास लिखे हैं जिसमें से 'दुर्गेश नंदनी', 'कपाल कुंडला', 'आनंदमठ', 'मृणालिनी', 'विषय वृक्ष', 'चंद्रशेखर', 'रजनी', राजसिंह', 'देवी चौधुरानी', 'सीताराम', 'राधारानी', 'इंदिरा', 'युगलांगुरिया' आदि प्रसिद्ध हैं। 'विज्ञान रहस्य', 'लोग रहस्य', 'धर्म तत्त्व', आदि उनके वैचारिक लेखों का संग्रह है। उनकी कविताएं 'ललित ओ मानस' संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उनकी प्रतिभा का प्रकाश साहित्य के विभिन्न विधाओं में हुआ है। किन्तु उपन्यास में उनकी प्रतिभा का निखार हुआ है। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लेखन को दिशा दी है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से बंगाल के जनमानस में गहरी पैठ बनाई है। उनके उपन्यास के पात्र शहरीमध्यवर्ग के लोग हैं, अतः उनमें आधुनिक जीवन की त्रासदियों तथा प्राचीन परंपराओं से जूझने की पीड़ा है। सच तो यह है कि भारतीय मध्यवर्ग बंकिम के उपन्यासों में अपनी छवि देखता है।

बंकिमचंद्र ने मध्यवर्गीय चेतना संपन्न जनमानस के भावों को सहज रूप में अभिव्यक्त किया है। धर्म, समाज, जाति, राजनीति, आदि विविध मुद्दे उनके लिखने से उभरे हैं। उनके उपन्यास बंगाल में लोकप्रिय हुए ही, बाकी भारत में भी उन्हें चाव से पढ़ा गया। उनकी लोक प्रियता का प्रमाण यह है कि पिछले देढ़ सौ सालों से उनके उपन्यास विभिन्न भाषाओं में

अनुदिप्त होते आ रहे हैं। उन्होंने गदर को निकट से देखा था। अंग्रेजों की दमन नीति से व्यक्ति भारतीयों की व्यथा देख कर वे संवेदनशील हो उठे थे। सरकारी सेवा में रहने के कारण वे सीधे—सीधे आंदोलन में उतर नहीं सकते थे, जिसकी पीड़ा उन्हें कचोटती थी। कहना ना होगा कि उनके लिए स्वतंत्रता की अलख जगाने का माध्यम साहित्य ही बन गया। वे स्वतंत्रता सेनानी के रूप में अपनी लेखनी को धार देने लगे। उनका राष्ट्रप्रेम साहित्य में मुखरित हो उठा तथा उनका साहित्यभावना को जागृति का शंखनाद बन गया। बंकिमचंद्र का प्रसिद्ध का ब्रह्म सोपान है 'आनंदमठ' एवं उसमें स्थान प्रसिद्ध गीत 'वंदेमातरम्'। इस उपन्यास में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले सन्यासियों के एकीकृत संघर्ष का वर्णन है। सन्यासी विद्रोह को अभिव्यक्त करने वाला यह उपन्यास स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध सा विद्रोह साबित होता है। ऐतिहासिक एवं सामाजिक ताने—बाने से बने बुने हुए इस उपन्यास ने देश में राष्ट्रीय भावना जागृत करने में सबसे बड़ा योगदान दिया। ऐसा लगता है कि अंग्रेजों के द्वारा भारतीय का अपमान तथा उन पर किए अत्याचार का जवाब 'आनंदमठ' के माध्यम से दिया गया है। वंदे मातरम् गीत ने तो देश की स्वतंत्रता संग्राम को नई ऊर्जा दी है। सरकारी सेवा में रहकर देश जागरण के लिए उच्चकोटि का साहित्य लिखना निडर बंकिमचंद्र के लिए असंभव नहीं था। इसलिए उन्हें आधुनिक बांग्ला साहित्य में राष्ट्रीयता का जनक कहा जाता है। राष्ट्रप्रेमी के रूप में बंकिमचंद्र का व्यक्तित्व हमें आज भी प्रभावित करने वाला है। मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति अगाध प्रेम ने ही उनके साहित्यकार रूप को पूर्णता प्रदान की है। 'आनंदमठ' के माध्यम से देश के कोने—कोने में—'बंदेमातरम्' का जयघोष फैलाने वाला लेखक बंकिमचंद्र

किसी विद्रोही से कम नहीं थे। उन्होंने 'वंदेमातरम्' के माध्यम से भारतीयों में राष्ट्रवंदना का संस्कार भर दिया है। उनकी मातृभाषा प्रेम को उदाहरण में भी देखा जा सकता है। "युवावस्था में उन्होंने अपने मित्र के अंग्रेजी में लिखा हुआ पत्र को बिना पढ़े इस टिप्पणी के साथ लौटा दिया था कि अंग्रेजी न तो तुम्हारी मातृभाषा है और न मेरी।" आज की युवा पीढ़ी मातृभाषा को लेकर उदासीन दिखाता है तरकीकामी युवा अंग्रेजी के सहारे उड़ना चाहता है। उसे पता नहीं कि मातृभाषा के बिना उसके पैर लड़खड़ा जाएंगे। वह उड़ तो सकता है पर पांव जमा नहीं सकता। हमें बंकिमचंद्र के स्वभाषा प्रेम से सीखने की आवश्यकता है इस संदर्भ में गुरुदेव का यह कथन प्रत्येक बंकिम साहित्य प्रेमी के लिए मनन करने योग्य है। "राममोहन ने बंग साहित्य को निमज्जन दशा से उन्नत किया। बंकिम ने उसके उपर प्रतिभा प्रवाहित की। बंकिम के कारण ही आज बंगभाषा मात्र प्रोढ़ ही नहीं उर्वरा और शस्यश्यामला भी हो सकती है।"

बंकिमचंद्र की लेखनी से बांग्ला भाषा साहित्य तो समृद्ध हुआ हो है, हिन्दी भी उपकृत हुई है। हिन्दी में उपन्यास लेखन के प्रेरणा स्रोत के रूप में बंकिमचंद्र के उपन्यासों को स्वीकारा जाता है। बांग्ला साहित्य को हिन्दी उपन्यास रचना का आधार मानते हुए रामचंद्र तिवारी लिखते हैं— 'ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में बांग्ला में बंकिम बाबू को आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी। उनके तीन उपन्यास 'दुर्गेशनंदनी', मृणालिनी', 'युगलांगुरिया' क्रमशः 1873, 1880 और 1880 में हिन्दी में अनूदित हुए थे। किशोरी लाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर बंकिम बाबू का स्पष्ट लक्षित होता है।' (हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ. 215) भारतेदु युग एवं द्विवेदी युग के लेखकों ने बंकिमचंद्र के उपन्यासों को अनुवाद करके हिन्दी पाठकों से परिचित

कराया है। वस्तुतः उपन्यास के क्षेत्र में बांगला साहित्य की श्रेष्ठता तत्कालीन हिन्दी लेखकों को मान्य थी और वे हिन्दी साहित्य के लिए बंगला साहित्य का सहारा लेना आवश्यक समझते थे। बंगला उपन्यासों से हिन्दी लेखकों को रचना संस्कार के साथ ही राष्ट्रीय जागरण का आलोक भी प्राप्त हुआ है। कहना न होगा कि इसका श्रेय निश्चित रूप से बंकिमचन्द्र को जाता है। वे हिन्दी भाषा के हिमायती भी थे। अपनी पत्रिका 'बंग—दर्शन' में प्रकाशित 'भारतेर एकता' निबंध में उन्होंने लिखा है। "सही अर्थ में भारत बंधु कहलाने का अधिकारी वही है जो हिन्दी भाषा के सहारे विभिन्न प्रदेशों के बीच एकता कायम कर सकते।" उन्होंने 'बंग दर्शन' पत्रिका के माध्यम से बंग भाषा और संस्कृति को जगाया है। पहले पहल रविनाथ उन्हें गुरु का सम्मान देते थे। रविंद्रनाथ ने एक जगह लिखा भी है— "बंकिम बांगला लेखकों के गुरु और पाठकों के लिए है।" कहना ना होगा कि आज भी राष्ट्रवादी जिस गीत को लेकर गर्व करते हैं तथा भारत वर्ष में जिसे राष्ट्रगीत का सम्मान दिया जाता है। वह है 'वंदेमातरम्'। इस गीत के लिए धुन रवींद्रनाथ ने तैयार किया था एवं कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेश में गाया भी था। तब से लेकर आज तक यह गीत राष्ट्रीय का प्रतीक बन कर हमें प्रेरित करता आ रहा है। अपने समय में इसी नाम से पत्रिकाएं निकली रचनाएं हुईं तथा विभिन्न काल—विधाओं में इसे स्थान दिया गया। जब—जब राष्ट्रीय भावना की बात होगी तब तब वंदे मातरम् का उच्चारण होगा।" इस संबंध में प्रो. शिवनाथ पांडे का कथन सटीक लगता है। उनके शब्दों में "बंकिम चंद्र का वंदेमातरम् वही भारत माता है, जिनके दर्शन मात्र से हर एक राष्ट्रप्रेमी भाषा और भूगोल की सीमा को पार कर भारतीयता के रंग में रंग जाता है।" निम्नलिखित छंद में भी यही

भाव "वंदे मातरम् मंत्र सा करके उच्चारण राष्ट्र—हित कर्म—व्रत का करलीजै धारणा। करलीजै धारण देशभक्ति जगाल। देश सेवा सबेत भली की जै मन लगाया। कह चक्रधर कविराय यही राष्ट्रधारण भारत जन मन से बोले वंदे मातरम्।"

निष्कर्ष यह है कि बंकिमचन्द्र ने अपने 56 वर्ष के जीवन में जो कालजयी रचनाएं बांगला साहित्य को दी हैं, वे भारतीय साहित्य के धरोहर हैं तथा आज 156 वर्ष के बाद भी लोकप्रिय हैं। उनकी राष्ट्रीय चेतना मुलक रचनाएं न केवल भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं, बल्कि दुनिया की भाषाओं में भी अनूदित हुई। एवं यह प्रक्रिया जारी है। नवजागरण की चेतना भरने वाली तथा राष्ट्रीय की लौ जलाने वाली रचनाएं कभी देश और काल की सीमा में बंध नहीं सकती हैं। बंकिम की रचनाएं कथन की पुष्टि करती है। सत्य तो यह है कि बंकिमचन्द्र का विजय में इतना लिखा जा चुका है कि उनके बारे में कुछ भी लिखना सूरज को दीया दिखाना है फिर भी छोटे से दिया के रूप में अपनी भावांजलि तो दे ही सकते हैं।

"बंकिमचन्द्र साहित्य इंद्र बंग—गद्य आकाश। साहित्य का नया रूप हुआ परि प्रकाश निबंध उपन्यास। उपन्यास में उत्तरा मानव जीवन अनायास। कह चक्रधर कविराय है। साक्षी सूर्य चंद्र उगता रहेगा साहित्यकाश में सदा बंकिमचंद्र।"



## वर्तमान समय में तुलसी के समन्वय का महत्व

**स**मन्वय का सामान्य अर्थ होता है पारस्परिक संबंधों का निर्वाह करना अथवा दो परस्पर सामन्जस्य स्थापित करना एकमात्र भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है।

अपनी यात्रा में यह अनेक विषम पड़ावों से हो कर गुजरी है। यह अनेक मत—मतांतरों, धर्मों, और संस्कृति के साथ सामन्जस्य स्थापित करती हुई आगे बढ़ती रहती है। हालांकि समय—समय पर इसमें विभिन्न चरित्र एवं स्वभाव वाली संस्कृति के आपसी टकराहट की अनुगंजों भी सुनायी देती रही हैं।

गोस्वामी तुलसी दास मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के एक बहुत ही लोक प्रिय भक्त कवि थे। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरित मानस' समस्त उत्तर भारत की जनता के गले का कंठहार तो है ही आज भी मॉरीशस, श्रीलंका, नेपाल वालों तथा विश्व के बहुसंख्य देश उनके दर्शन से प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं। आज जबकि पूरे विश्व में सांस्कृतिक टकराव की अनुगूंज है। सामुदायिक, धार्मिक तथा क्षेत्रीय असहिष्णुता का बोल बाला है। हर तरफ कटूरता बढ़ रही है और विरोधी विचारधारों, दर्शनों एवं मान्यताओं को नष्ट कर अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिशों की जा रही है। आज जबकि अनेक राष्ट्र हथियारों से लैस होकर एक दूसरे पर हमले के लिए तैयार खड़े हैं।

एक दूसरे से भिन्न विचारधाराओं तथा दर्शनों के बीच सामंजस्य और सौहार्द स्थापित करने वाली संस्कृति को एकदम नष्ट नाबूद कर देने की कोशिशें हो रही हैं। आज जबकि चारों तरफ घृणा और विद्वेश का माहौल है। जबकि भूमंडलीकरण के दौर में बढ़ते बाजरवाद और उपभोक्ता सांस्कृति के कारण मानव मूल्य संकट

डॉ. श्रीनिवास सिंह यादव

हिन्दी विभाग

श्यामा प्रसाद कॉलेज, कोलकाता

में हैं हैं तब महान संत कवि तुलसी दास की समन्वयवादी दृष्टि आज के अराजक होते जा रहे विश्व को शांति की राह दिखा सकते हैं।

तुलसी का पूरा 'रामचरित मानस' हर प्रकार के समन्वय का एक अद्भुत प्रयास है और इस कार्य में उनको अपार सफलता भी मिली है। जिस मध्यकालीन परिस्थिति में तुलसी दास का आविर्भाव हुआ, वह बहुत ही उथल—पुथल, आपसी खींचतान ईर्ष्या, द्वेष, अंतर्विरोधों और विषमताओं से भरपूर थी। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तत्कालीन परिस्थिति में गोस्वामी तुलसी के प्रादुर्भाव पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'सामंजस्य का भाव लेकर गोस्वामी जी ने उस समय भारतीय जनमानस्य के बीच अपनी ज्योति जागाई जिस समय नए—नए सम्प्रदायों की खींच—तान के कारण आर्य धर्म का व्यापक स्वरूप आंखों से ओझल हो रहा था, एकाग्रदार्शिता बढ़ रही थी, जो एक कोना देख पाता था, वह दूसरे कोने पर दृष्टि रखने वालों बुरा—भला कहता था, शैवों—वैष्णवों, शाक्यों कर्मठों की तू—तू मैं—मैं तो थी ही, बीच में मुसलमानों से अविरोध प्रदर्शन करने के लिए भी अनपढ़ जनता को साथ लाने वाले कई नए—नए पंथ निकल चुके थे जिसमें एकेश्वरवाद का कटूर स्वरूप, उपासना का आशिकी रंग—ढंग, ज्ञान—विज्ञान की निन्दा, विद्वानों का उपहास, वेदान्त के दो चार प्रसिद्ध शब्दों का अनाधिकार प्रयोग आदि सब कुछ परलोक को व्यथित करने वाली वह मर्यादा न थी जो भारतीय आर्य धर्म का प्रधान लक्ष्य है।'

प्रसिद्ध भाषाशास्त्रों जार्ज ग्रियर्सन ने गोस्वामी तुलसी दास को महात्मा बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक बताया है। प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनकी अभूतपूर्व सफलता पर विचार करते हुए लिखा है कि “भारत वर्ष का लोक नायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया है।” समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ आचार-विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसी दास स्वयं नाना सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य ग्रंथों में जहां लोक विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वही शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उनमें केवल लोकशास्त्र का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गृहस्थ, ज्ञान और भक्ति का भाषा और संस्कृति का निर्गुण और सगुन का पुराण और और काव्य का भाववेग और अनाशक्त चिंतन का, ब्राह्मण और चंडाल का, पंडित और अपंडित का समन्वय, ‘रामचरित मानस’ के आदि से अंत तक दो छोरों पर जाने वाली परा-कोटियों के मिलने का प्रयत्न है।” वस्तुतः तुलसी दास ने जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय द्वारा समाजों में सौहार्द स्थपित करने की कोशिश की है। हम कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर विचार करेंगे—

### सगुण और निर्गुण का समन्वय :

ईश्वर के संबंधों यह दो मत आदिकाल से चले आ रहे हैं और आज भी जारी है। निर्गुणवादियों के अनुसार ईश्वर का कोई स्वरूप नहीं होता है। वह निर्गुण निराकार है, वह अवतार धारण नहीं करता। उसकी कोई मूर्ति नहीं गढ़ी जा सकती। निर्गुणवादियों के अनुसार मूर्ति पूजा गलत है। ईश्वर को निराकार मानने वालों लोग आज भी मूर्ति पूजा का विरोध करते

हैं। उनके पूजा स्थलों पर ईश्वर की कोई मूर्ति या फोटो नहीं होता। कुछ वर्ष यह अफगानिस्तान में उन लोगों ने भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ बड़ी बेरहमी से तोड़ डाली, जो बुतपरस्ती या मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं।

सगुण मतावलम्बियों के अनुसार ईश्वर अवतार लेता है, लीलाएं करता है, प्रतीक के रूप में उसकी मूर्तियाँ बनाई जा सकती है, उसकी पूजा की जा सकती है। ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करने से वह प्रसन्न होता है। सगुण मतालम्बी निर्गुण मतावलम्बियों के ईश्वर पर ईश्वर पर ही सवाल खड़ा करते हैं। सूरदास जी ने लिखा है—“रूप, रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब कित ध्यावै ...।” अर्थात् जिस ईश्वर का कोई रूप नहीं, कोई चिन्ह नहीं, कोई जाति नहीं उसका बिना आधार के ध्यान कैसे किया जाय। वस्तुतः ईश्वर के निर्गुण और सगुण स्वरूप को लेकर संघर्ष आज भी चल रहा है और तुलसी के आर्विभाव के समय तो यह और तीव्र था।

तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण दोनों विचारधाराओं का दर्शनों में बड़ी कुशलता पूर्वक समन्वय स्थापित किया है, जो आज भी विश्व समुदाय के लिए प्रेरक और मार्ग दर्शक है उन्होंने पूरे ‘रामचरित मानस’ में जगह-जगह यह समझाने का प्रयास किया है कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है बल्कि निर्गुण और सगुण एक ही ईश्वर के दो स्वरूप है—

“सगुनहि अगुनहिं नहिं कुछ भेद।  
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ॥  
अगुन—सगुन हुई ब्रह्म स्वरूपा ।  
अकथ—अगाध अनादि अनूपा ॥”

अर्थात् वेद और शास्त्रों के अनुसार निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है। निर्गुण और सगुण ईश्वर के दो रूप हैं। तुलसीदास बार-बार समझाने का प्रयास करते हैं कि निर्गुण ईश्वर ही

आवश्यकता पड़ने पर जनकल्याण के लिए एवं भक्तों की रक्षा के सगुण साकार रूप में अवतार लेते हैं—

“अगुन अरुप अलख अजजौई।

भगत प्रेस बस सगुन सो होई ॥”

### **शैव-वैष्णव और शाक्त में समन्वय :**

आज भी वैश्विक स्तरपर अपनी—अपनी उपासना पद्धतियों को श्रेष्ठ साबित करने में लगे हुए हैं। तुलसी के समय में शैव-वैष्णव एवं शाक्त सम्प्रदायों के बीच बहुत अधिक विद्वेष फैला हुआ था। खास कर शैवों एवं वैष्णवों में समय—समय पर आपस में झगड़े होते रहते थे। शैव-वैष्णवों को नीचा दिखाते थे और वैष्णव शिव भक्तों की अवहेलना किया करते थे। गोस्वामी तुलसी दास ने इन तीनों सम्प्रदायों के बीच सौहार्द स्थापित करने का प्रयास किया। श्रीराम विधिवत शिव की पूजा करते हैं, इसके बाद घोषणा करते हैं कि शिव से द्रोह करता है और मेरा भक्त कहलता है वह सपने में भी मुझको प्राप्त नहीं कर सकता है—

“शिव द्रोही मम भक्त कहावा।

सां नर सपने हूं मोही न पावा ॥”

तुलसी ने तत्कालीन समय में वैष्णवों एवं शाक्तों के बीच फैले विद्वेष को भी दूर करने का प्रयास किया। जगत् जननी ब्रह्म की शावित्र, सीता, शविता स्वरूप पार्वती की वंदना और पूजा करती है—

“जय—जय गिरिराज किशोरी।

जय महेस मुख चंद चकोरी ॥।

जय गजबदन खड़ानन माता ।

जगत् जननी दामिनि दुति गाता ॥”

### **ज्ञान और भक्ति का समन्वय :**

तुलसी के समय में ज्ञानियों और भक्तों के बीच भी बहुत विवाद चलता था। ज्ञानी स्वयं को भक्तों से श्रेष्ठ मानते थे और भक्तों को नीचा दिखाते थे। उधर भक्त अपने को ज्ञानियों

से ऊंचा समझते थे और उनका बहिष्कार करते थे। तुलसी दास ने इन दोनों साधना पद्धतियों को मानने वालों के बीच फैले आपसी विद्वेष को दूर कर उनमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने दोनों ही प्रकार की साधना पद्धतियों को मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति का साधन बताया—“ज्ञानहिं भर्गातहिं नहीं कुछभेद ।

उभयहरिदिं भव संभव खेदा ॥”

तुलसी को संस्कृत भाषा में महारत हासिल थी किंतु लोक भावना को ध्यान में रखते हुए उन्होंने संस्कृत के साथ—साथ अवधि और ब्रजभाषा में अपनी रचनाएँ की।

**वस्तुतः** तुलसी दास एक मानवतावादी रचनाकार थे मानव मात्र का कल्याण उनकी रचना का मूल उद्देश्य था। यह जीवन ही सामंजस्य सीखने की एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है— स्वयं की इच्छाओं के साथ मन के विचारों के साथ अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ, अपने परिवार, समाज विचारधाराओं एवं संस्कृतियों के साथ तुलसी ने जीवन और समाज को सहज और सुन्दर बनाने के लिए जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय का मार्ग निर्देशित किया है। समन्वय की जितनी आवश्यकता मध्यकालीन समाज में थी उसकी आवश्यकताओं और अधिक विश्व समुदाय को है, क्योंकि आज के समाज की संरचना और अधिक जटिल है और विश्व समुदाय पहले से अधिक तनावपूर्ण स्थितियों मूल्यहीनता और संवेदनहीनता लगातार बढ़ रही है। पूरे विश्व में साम्प्रदायिक कट्टरता और धार्मिक असहिष्णुता का वातावरण छाया हुआ है।

• • • • •

## मोहन राकेश की कहानियों में विश्लेषित नारी

**मोहन राकेश** ने कथा साहित्य में खासतौर पर कहानियों के क्षेत्र में नया संदर्भ प्रस्तुत किया है। हिन्दी कहानी—जगत को नयी दिशा प्रदान की है। राकेश संक्रांतिकालीन समाज से जुड़े हुए लेखक थे। राकेश जी की कहानियों में विभाजन के बाद भारतीय समाज में आए हुए परिवर्तन का चित्र है। कहानियों में टूटती आशाएँ और मानवता का स्वर है। मध्यवर्ग राकेश जी की कहानियों का केन्द्र बिन्दु है। उस वर्ग का सुख—दुःख, परंपरा, संस्कार, मान्यताएँ, जीवन—मूल्य कहानियों के आधार रहे हैं। मानवीय संबंधों के उतार—चढ़ाव को नये संदर्भ में अभिव्यक्त किया है। व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न नवीन परिस्थितियाँ और प्रश्नों को कहानियों में प्रस्तुत किया है। आधुनिक भारत के आम आदमी के जीवन को कई संदर्भों में चित्रित किया है।

मोहन राकेश जी की कहानियों में जीवन बोध बोलता है, बल्कि जीवन अभिव्यक्त भी होता है और आस—पास की परिस्थितियों से संबंध बनाए चलता है। कहानियों में राकेश ने लेखक के दायित्व को बहुत महत्व दिया है, जो परिवेश के प्रति सजग और सतर्क रहकर ही पूरा किया जा सकता है। उनकी दृष्टि में कहानी युग की प्राणशक्ति को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। यह जीवन के पल—पल बदलते स्पंदनों को व्यक्त करती है। कहानीकार मोहन राकेश चरित्र पर अपेक्षित बल देते हैं, क्योंकि कहानी में चरित्र ही एक ऐसा तत्व है जो अपनी सजीवता और विश्वसनीयता से एक प्रभावकारी अवसर निर्मित करता है। कहानी परिवेश का प्रतिबिम्ब है। प्रत्येक साधारण व्यक्ति प्रतिदिन कोई न कोई कहानी जीता है। राकेश की कहानियाँ ईमानदार शैली में लिखी गई मानवीय संबंधों की कहानियाँ हैं। डॉ. सुषमा अग्रवाल के शब्दों में “एक वाक्य में राकेश की कहानियाँ संबंधों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में फैलते

**रीता कुमारी (शोधार्थी)**

हिन्दी विभाग

राँची विश्वविद्यालय, राँची

लोगों की कहानियाँ हैं। उनमें निरूपित चरित्र परिस्थितियों के घात—संघात व्यक्त करते हैं। वे मनुष्य हैं और उनका परिवेश यथार्थ है। राकेश एक निर्वक्तिका और निःसंगता के साथ अपने चरित्रों को प्रस्तुत किया है”।<sup>1</sup>

मोहन राकेश के लेखन के संबंध महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों और अनुभूतियों को अपने कथा साहित्य की पृष्ठभूमि बनाया। मोहन राकेश का संवेदनशील मन सदा अपने आसपास की घटनाओं से उद्देलित देखा जा सकता है। उन्होंने नारी की मनःस्थिति को अपनी कहानियों में अभिव्यंजित किया। एक ओर राकेश अपने मन की व्याकुलता को व्यक्त करना चाहते हैं। दूसरी ओर वे अपने आस—पास के जीवन को खुली दृष्टि से देखते हैं और उसका उपयोग अपनी रचनाओं में करते हैं। राकेश की अनुभूति जीवन के नाना प्रसंगों से जुड़ी हुई है। स्वयं राकेश ने लिखा है कि— “मेरे लिए अनुभूति का सीधा संबंध मेरे यथार्थ से है, मेरा समय और परिवेश व्यक्ति से परिवार, परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज तक का पुरा परिवेश मैं इनमें से किसी एक से कटकर शेष से जुड़ा नहीं रह सकता।”<sup>2</sup>

मोहन राकेश की कहानी लेखन हिन्दी कहानी के उस दौर का सूचक है, जहाँ कहानी के केन्द्र में केवल व्यक्ति की प्रतिष्ठा ही नहीं, अपितु समाजिक शक्तियों का समाहार भी किया गया है। राकेश जी की कहानियों के नारी चरित्र अधिक प्रभावशाली हैं नारी समाजिक स्तर पर अपनी पहचान बनाने में कामयाब हुई है, किन्तु जीवन के संघर्ष में उसके परांपरित और आदर्श रूप पर कई प्रश्न छोड़ जाती है। ऐसी स्थिति में नारी का जीवन दोहरे संघर्ष से गुजरता है।

एक ओर घर से बाहर आकर बाहर की जिंदगी की रफ्तार और उथल—पुथल के साथ चलना, दूसरा अपने परंपरित छवि के साथ—साथ उच्च मानवीय मूल्यों और संस्कारों को संरक्षित रखना। इस प्रक्रिया में आज की नारी अपनी—अपनी जिंदगी ढोती है। राजेन्द्र यादव ने कहा है कि युद्ध और स्वतंत्रता के बाद औधोगीकरण और शहरीकरण की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों ने नारी के आत्मनिर्भर, आत्मनिर्णायक होने की स्थितियों ने उसके स्वरूप और मानसिक गठन को और परिणामतः पुरुष के साथ उसके संबंधों को बदला।<sup>3</sup>

मोहन राकेश की कुछ कहानियाँ स्त्रियों के जीवन की विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करती है। ‘सुहागिने’ कहानी जिसमें मनोरमा और काशी दो विवाहित स्त्रियों की विवशता की कहानी है। इस कहानी में पति—पत्नी के संबंध एक दूसरे के परे हैं। किसी का होना या न होना कोई मायने नहीं रखता है। सभी को किसी न किसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अलग—अलग रहना पड़ता है। मनोरमा को पति से दूर जाकर नौकरी करनी पड़ती है। मनोरमा की नौकरानी काशी अपने पति से दूर रहकर बच्चों का पालन—पोषण करने के लिए स्कूल में दाई का काम करती है। इसी तरह मनोरमा को पति सुशील की चिट्ठी आती है, तो उसे लगता है कि अकेलापन दूर हो जाएगा। पर चिट्ठियाँ पढ़कर उसे लगता है कि जैसे वह एक चश्में से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके होंठ गिले रेत से छुकर रह गए हों।<sup>4</sup> उसका यह अलगाव उसे एक हिलती—डुलती काया मात्र बना देती है। दूसरी तरफ काशी अपने पति अयोध्या से इस लिए जुड़ी कि वह उसका पति है। कहानी में सभी संबंधों का बोध बना रहता है। मनोरमा सुशील से कुछ कहना चाहती है और वह अपना खालीपन उसे बताना चाहती है, लेकिन चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती। मनोरमा के हृदय में मातृत्व उमड़ रहा है, किन्तु सुशील इस बारे में

अभी तैयार नहीं है। अपने को उसके शरीर में खो देने के बाद जब सुशील उससे दूर हटने लगता है तो यह उसे और भी पास कर लेना चाहती थी। वह कल्पना में अपने को एक छोटे से बच्चे को लिए हुए देखती है और पुलकित हो उठती है। उसे आश्चर्य होता है कि क्या सचमुच एक हिलती—डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है। कितनी बार वह सुशील से कहती थी कि यह आश्चर्य को अपने अंदर अनुभव करके देखना चाहती है। मगर सुशील इसके हक में नहीं था वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर में आने दे।<sup>5</sup>

इस तरह मनोरमा अंदर से पीड़ित है। काशी की पीड़ा बाहरी है। दोनों ही सुहागिने हैं, किन्तु वरदानों से वंचित है। वह वंचनामय पीड़ा ही उसके व्यक्तित्व को ऐसी नामहीन ट्रेजडी है जो उन्हें भीतर बाहर तोड़ रही है। इस प्रकार ‘सुहागिने’ की काशी और मनोरमा का सुहागिन होना ही सबसे बड़ी विडम्बना है। मोहन राकेश की एक और महत्वपूर्ण कहानी ‘मिसपाल’ में स्त्री के निर्थक अकेलेपन की कथा कही गयी है। जहाँ मिसपाल मर्दों के साथ फिट नहीं हो सकती, इसलिए वह स्वतंत्र रूप से निर्णय लेती हुई पहाड़ी जगह पर जाने का मन बना लेती है। लेकिन वहाँ पर भी मिसपाल की पुरानी अनुभूति पीछा नहीं छोड़ती है। पुराने दफतर के बारे में कहती है—“मुझे लगता है, मैं खामखाह यहाँ अपनी जिंदगी बरबाद कर रही हूँ। मेरी समझ में नहीं आता है कि इस तरह की जिंदगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है? सुबह उठती हूँ दफतर चली जाती हूँ। वहाँ सात—आठ घंटे खराब करके घर आती हूँ खाना खाती हूँ और सो जाती हूँ।”<sup>6</sup> यहाँ मिसपाल के जीवन की कुंठा तथा अकेलेपन की निर्थकता दिखाई देती है जहाँ उसे अपने मोटापे तथा कुरुपता के कारण आत्म ग्लानि महसूस होती है। इसलिए दफतर के किसी कर्मचारी से वह सहज व्यवहार

नहीं कर पाती है। वह दफतर में अपने सहकर्मियों से परेषान है, क्योंकि सब उसका मजाक उड़ाते रहते हैं। इसलिए दफतर से त्यागपत्र देकर पहाड़ी जगह पर एकांत में चली जाती है। मिसपाल स्वतंत्र व बेहतर जीवन जीने वाली स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। जहाँ वह स्वच्छ व उन्मुक्त होकर रहना चाहती है, मगर युगीन परिस्थितियों और अपने कुरुप और भद्दे मोटापे का यह एहसास मिसपाल के चरित्र में असंतुलन पैदा करने लगता है, जिससे उसे हमेशा अपने जीवन की निरर्थकता, उब, घुटन और अकेलापन का भी एहसास होता है। जबकि मिसपाल को फैसनेबल कपड़े पहनना तथा उन्मुक्त घुमना प्रिय लगता है, मगर उनका असुंदर होना ही जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना बन जाती है। मोहन राकेश ने आज के मानव-संबंधों के परिवर्तन को बड़ी गहराई से आंका है। एक और मिसपाल के विचार तथा पहनावे से वह स्वतंत्र व उन्मुख जीवन जीने वाली स्त्री लगती है, मगर अपने आत्म पर केंद्रित होने तथा कुरुपता व मोटापे के एहसास ने मिसपाल को बाह्य परिवेश तथा अंतर्जगत से अलग कर दिया। अर्थात् बाह्य आंतरिक दोनों परिवेश से सामंजस्य न बैठा पाने के कारण मिसपाल का जीवन एक कुंठित स्त्री का जीवन बनकर रह गया। इस प्रकार कहानीकार ने मिसपाल के माध्यम से स्वातंत्रयोत्तर पढ़ी—लिखी, शहरी मध्यमवर्गीय महिलाओं का चित्र प्रस्तुत किया। इस प्रकार मिसपाल की समस्या आधुनिक औद्योगिक सभ्यता में मध्यवर्गीय विकृति के रूप में परिलक्षित हुई है।

भूखे कहानी में आदर्श पत्नी का चित्रण हुआ है। जहाँ एवलीन अपने पति के प्रति पूरी तरह समर्पित है। इस कहानी की एक खासियत इस बात में भी उजागर होती है कि वह एक विदेशी महिला होकर भी पूरी तरह भारतीय समाज के ढाँचे में ढलकर अपने पति की सेवा में सेवारत है। टी. वी. ग्रस्त पति सत्यपाल का

वह अंतिम समय तक साथ देती है। हालांकि दयनीय स्थिति के कारण एवलीन के परिवार की आर्थिक स्थिति जर्जरावस्था में है फिर भी वह पति के चित्रों के बिकने के इंतजार में आशावादी है इसलिए वह कहती है "किसी दिन तस्वीरें अच्छी कीमत पर बिक जाएंगी।"<sup>7</sup> एवलीन पुरुषवादी मानसिकता को अच्छी तरह जानती थी, इसलिए उसने अपने प्रेम के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुए उज्ज्वल प्रेम की एक आदर्श स्वरूप की मिशाल दी है। वह एक आदर्श माँ की तरह अपने बच्चों को भी समझाती है जब वह कुछ खाने की जिद्द करता है। "नहीं बेटे वह फिर समझाती हुई बोली मम्मी की तू इतनी बात नहीं मानता। मैं तुझे आलू की टिकिया भी खिलाऊँगी, सब कुछ खिलाऊँगी, मगर कुछ दिन ठहर जा समझा न? इस बत्त तू यह मूँगफली ले ले, बहुत अच्छी भुनी हुई मूँगफली है।"<sup>8</sup> इस प्रकार इस कहानी में नारी चरित्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष उभरा है। साथ ही साथ एक विधवा और गरीब स्त्री के जीवन की पीड़ा को कहानीकार ने बखूबी चित्रित किया है। जिसके कारण विधवा स्त्री का अकेलापन भी उजागर हुआ है। मोहन राकेश को अपनी कहानियों पर गहरी पकड़ थी, इसलिए उनकी कहानियों में मन के द्वन्द्व, बदलते सामाजिक जीवन और मूल्यों के ह्वास का सूक्ष्मता से अवलोकन हुआ है शायद यही कारण है कि स्त्री के विभिन्न रूपों में वे आदर्श स्वरूप को भावनात्मक धरातल पर स्वीकार करने के साथ ही उस सुख को वे खुद भी महसूस करते हैं। ऐसी कई कहानियों में उन्होंने स्त्री स्वरूप के परिवर्तन के साथ-साथ आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत किया है।

'आर्द्धा' कहानी एक माँ बचन की है, जिनके दो बेटों एक बिल्कुल निर्धन व बेरोजगार तथा दूसरा साधन संपन्न रोजगार प्राप्त के बीच झूलती ममतामयी माँ का चरित्र ही सर्वप्रमुख और सर्वोपरि रेखांकित हुआ माँ के रूप में स्त्री जीवन का आदर्श स्वरूप दिखाई देता है। मगर

इस आदर्श रूप के बीच माँ की क्या स्थिति होती है? यह आधुनिक जीवन की बड़ी विडम्बना है। 'आद्रा' की बचन आधुनिक और परंपरागत परिवेश से संघर्ष करती हुई प्रतीत होती है। एक ओर लाली की तो दूसरी और बिन्नी की चिंता के बीच वह पीस रही है। बेटों का माँ के प्रति क्या फर्ज है? इसकी चिंता दोनों बेटों को नहीं है। कई बार उसे भूखी—प्यासी तथा बासी रोटी खाकर सोना पड़ा, मगर फिर भी उसे बिन्नी के साथ रहना उसे अनुकूल लगता, इसलिए कुसुम कहती है— "माँ जी का यहाँ दिल नहीं लगता...."<sup>9</sup> बड़े बेटे की सुविधा बचन को ज्यादा दिन तक बाँध नहीं सकी, इसलिए वह वहाँ से जाने के लिए तैयार हो गयी। यह एक माँ का गुण भी है कि वह सबसे छोटे और गरीब बेटे के प्रति तुलनात्मक रूप में ममतामयी भाव रखती है। कहानी की आदर्श स्थिति इस बात में अधिक झलकती है जहाँ बचन सुख सुविधाओं को एक व्यक्ति की तरह त्यागती हुई ममतामयी माँ का रूप प्रस्तुत करती है, हालांकि उसकी भी अपनी परिवेशगत विवषताएँ तथा विडम्बनाएँ हैं फिर भी एक माँ के रूप में दोनों बेटों के प्रति चिंतित व सचेत है कहानीकार मोहन राकेश ने इस कहानी के माध्यम से 'बचन' की मनोदशा को यथार्थ फलक में उभारा है, जहाँ केवल माँ ही अपने पुत्रों के प्रति चिंतित है, मगर पुत्रों का माँ के प्रति कोई फर्ज नहीं दिखाई देता है। इस प्रकार आजादी के बाद भारतीय समाज की नयी पीढ़ी के तनावग्रस्त व अभावग्रस्त जीवन को भी दर्शाया गया है।

'उसकी रोटी' कहानी में ग्रामीण स्त्री की मार्मिक व्यथा—कथा का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। इस कहानी में पुजाब के एक गाँव की पृष्ठभूमि को लिए हुए है। इस कहानी की नायिका बालो ड्राइबर सुच्चा सिंह की पत्नी है। वह सुच्चा सिंह के हर अत्याचार व कठोरता को सहन करती है। बालो के पास उसकी बहन भी रहती थी। बालो रोज एक मील चलकर अपने

पति को रोटी देने बस स्टैंड जाती थी, लेकिन उस रोज उसे देर हो गयी क्योंकि उसने अपनी बहन जिन्दा को उपले लाने के लिए भेजी थी। वहाँ जंगी ने उससे छेड़खानी की। फलतः वह बिना उपले लिए ही घर भाग कर आ गई। बालो जब स्टैंड पर पहुँची तो सुच्चा सिंह जा चुका था। वापिस वह लौटी तो उसने गुस्से के कारण बालो के आग्रह पर ध्यान नहीं दिया और बस स्टार्ट कर दी। बालो ने पुनः रात के नौ बजे तक बस के आने का इंतजार किया। यद्यपि बालो जानती थी कि सुच्चा सिंह जब जालांधर से लौट कर आएगा तो संभव है खाना खा कर आए क्योंकि रोटी तो वहीं बाहर खा लेगा। लेकिन उसके गुस्से का क्या होगा? राकेश ने इस कहानी में बालो की मानसिकता का प्रभावशाली और स्वभाविक चित्रण किया है। बालो अपने पति के बारे में तरह—तरह की बातें सुनती है कि उसकी करबे में कोई रखैल है, लेकिन बालो का ऐसी बातों पर विश्वास नहीं जमता। वह सुच्चा सिंह के गुस्से से परिचित है इसलिए वह यही चाहती है कि उसका पति खुश रहे, गुस्सा न करे, इसलिए वह बस स्टैंड पर घंटों इंतजार करती है। राकेश ने ग्रामीण नारी का जो चरित्र प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत मार्मिक है। 'एक और जिंदगी' की बीना एकदम स्वतंत्र व आत्मनिर्भर थी। हालांकि यह कहानी वैवाहिक जीवन के ट्रैजिक तनाव को पूरी गहराई से आंकती है। इसलिए इस कहानी में पुराने और नए मूल्यों की टकराहट का सफल उदाहरण प्रस्तुत हुआ है। इस कहानी में बदलती पारिवारिक भूमिकाओं का अंकन हुआ है। बीना एक आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करने वाली पढ़ी—लिखी आत्मनिर्भर महिला है। उनका संबंध कुछ ऐसा था कि "ब्याह के कुछ महीने बाद से ही पति—पत्नी अलग रहने लगे थे। ब्याह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था, वह जुड़ नहीं सका। दोनों अलग—अलग जगह काम करते थे और अपना—अपना स्वतंत्र

ताना—बाना बुनकर जी रहे थे वह लोकाचार ही इस बच्चे को दुनिया में ले आया था। बीना समझती थी कि इस तरह जान—बुझकर उसे फँसा दिया गया है। प्रकाश सोंचता था कि अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया।”<sup>10</sup>

मोहन राकेश ने आधुनिक मूल्यों और पुराने मूल्यों में आये परिवर्तन को पूरी ईमानदारी से उभारते हुए आधुनिक स्त्री की आत्म निर्भरता को उजागर किया। इस प्रकार आधुनिक स्त्री के रूप में बीना का चरित्र पूरी तरह से सफल है। बीना आज की आधुनिक, स्वतंत्र तथा निर्भीक स्त्रियों की प्रतिनिधित्व करने वाली एक सशक्त नारी पात्र के रूप में चित्रित हुई है। वस्तुतः मोहन राकेश ने स्त्री जीवन के बाह्य और आंतरिक संवेदनात्मक पहलुओं को बड़ी ही गहराई से अंकन किया। स्त्री के जीवन की यथार्थपरक यंत्रणाएँ इनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य रहा है। इनकी कहानियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि आजादी के बाद भारतीय समाज में विशेषकर मध्यवर्गीय समाज की स्त्रियों में चेतना की लहर दौड़ पड़ी। परिणामस्वरूप स्त्रियों अपने स्वतंत्र के प्रति जागृत होकर अपनी अस्तित्व की लड़ाईयाँ खुद लड़ने लगी। और न ही अब वह पुरुष के रहमोकरम पर निर्भर थी। बल्कि स्त्री के स्वतंत्र की लड़ाई में पुराने मूल्यों और नए मूल्यों की टकराहट भी दिखाई देती है। इस प्रकार यहाँ स्त्री के स्वरूप में भिन्न—भिन्न स्त्रियों का संवेदनात्मक धरातल पर रूप विविधता का अंकन दिखाई देता है। कहीं स्त्री पूरी तरह स्वतंत्र, आत्मनिर्भर व आधुनिक है, तो कहीं ठेठ भारतीय परंपरा व संस्कारगत आस्था से जुड़ी हुई है। आज की स्त्रियों की विडम्बना, यातना और त्रासद रिथ्ति को समझने के लिए राकेश की यह कहानियाँ अधिक सफल सिद्ध हुई हैं। इनकी कहानियों में स्त्रियों की संवेदनाओं को समाज और परिवेश के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है, इसलिए कहा जाता है कि मोहन राकेश के कुछ कहानियों में समकालीन जीवन का यथार्थ व्यक्त हुआ है।

मोहन राकेश यह स्वयं स्वीकार करते हैं कि “उनकी रचना—दृष्टि का सीधा संबंध आस—पास जिए जा रहे जीवन की विडम्बनाओं और विभ्रमों को झेलते हुए व्यक्ति के साथ है। उनका लेखन व्यक्ति को आसपास के प्रभावों से अलग एक कटी हुई ईकाई के रूप में नहीं देखता, बल्कि संपूर्ण मानसिक सामाजिक—राजनीतिक परिवेश को उसका अविभाज्य अंग समझता है। व्यक्ति और उसके परिवेश के अंदर से ही संवेदना और व्यंग्य के सूत्र उठाकर वह उन्हें कालखंडों में बुन देता है।”<sup>11</sup> इस प्रकार मोहन राकेश की चिंता शुरू से लेकर आखिर तक रही है। परिणामस्वरूप कथा साहित्य के बहाने स्वातंत्रयोत्तर भारतीय समाज को परिवर्तनशील स्थितियों को अनुभूति की प्रमाणिकता पर आंकने की सफल कोशिश की है। जिसमें स्त्री जीवन की अस्मिता को परिवर्तनशील परिस्थितियों के संदर्भ में देखा।

### संदर्भ सूची :

1. डॉ. सुषमा अग्रवाल, कहानीकार मोहन राकेश पृ. 48
2. मोहन राकेश, परिवेश, पृ. 20
3. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानांतर, पृ. 34
4. मोहन राकेश, पहचान, सुहागिने, पृ. 40
5. वही, पृ. 34
6. (सं.) अनिता राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, भूखे, राजपाल एण्ड संन्ज दिल्ली, पृ. 12
7. वही, पृ. 108
8. (सं.) अनिता राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, भूखे राजपाल एण्ड संन्ज दिल्ली, पृ. 119
9. वही, आर्द्रा, पृ. 50
10. वही, एक और जिन्दगी, पृ. 278
11. मोहन राकेश, बकलमखुद राजपाल एण्ड संस दिल्ली पृ. 118

## हिन्दी साहित्य में भारतेंदु युगीन महिला रचनाकारों का अवदान

### हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु

युग को 'नवजागरण काल' भी कहा जाता है, आधुनिक काल की शुरुआत यहाँ से होती है साथ ही यह गद्य विधाओं के उद्भव का युग भी है। लेकिन, इस युग में जैसा जागरण अन्य क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है वैसा महिला रचनाकारों के प्रति नहीं नजर नहीं आता। महिला रचनाकारों की दृष्टि से देखें तो इस युग के 'क्रान्तिकारी' और 'प्रगतिशील' जैसे शब्दों पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया जा सकता है। काफी समय बीतने के बाद अब जाकर इस क्षेत्र में इतिहासकारों, साहित्यकारों, आलोचकों और शोधार्थियों द्वारा कुछ जाँच पड़ताल की जा रही है। नतीजतन बहुत कुछ निकल कर सामने आ रहा है। यह शोध—पत्र भी उसी जाँच—पड़ताल का एक हिस्सा है। प्रस्तुत शोध—पत्र में तद्युगीन लेखिकाओं और उनकी रचनाधर्मिता पर विश्लेषण किया गया है।

**बीज—शब्द :** भारतेंदु युग, नवजागरण काल, स्त्री—विमर्श, सीमान्तनी उपदेश, पुन्सवादी—समाज, भोगा हुआ यथार्थ

हिन्दी साहित्य को साहित्य के इतिहासकारों द्वारा मुख्यतः आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, और आधुनिक काल के नाम से चार कालखंडों में विभाजित किया गया है। सभी कालखंडों के अपने—अपने विभाजन और उप—विभाजन भी हैं। इन विभाजनों एवं उप—विभाजनों में पुरुष रचनाकारों के अलावा महिला रचनाकारों की उपस्थिति भी यदा—कदा देखी जा सकती है। लेकिन आधुनिककाल के भारतेंदु युग, 'जिसे नवजागरण काल के साथ—साथ हिन्दी साहित्य की गद्य विधाओं के उद्भव का युग भी कहा जाता है' महिला रचनाकारों का प्रमुखता से जिक्र न मिलना

डॉ. महेश सिंह

सहायक शिक्षक

उत्क्रमित उच्च विद्यालय, फूलची  
गाण्डेय, गिरिडीह, झारखण्ड

'नवजागरण' जैसे क्रान्तिकारी और प्रगतिशील शब्द पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगा देता है। इस युग से संबंधित साहित्यिक सामग्री की काफी जाँच—पड़ताल के बाद डॉ. भवदेव पाण्डेय, डॉ. धर्मवीर, जगदीश्वर चतुर्वेदी और वीर भारत तलवार की शोध—परक पुस्तकों के माध्यम से कई महिला रचनाकारों के नाम उभर कर सामने आए हैं। जिनमें 'एक अज्ञात हिन्दू महिला', 'सरस्वती गुप्ता', प्रियंवदा देवी, हेमंत कुमारी चौधरी, यशोदा देवी, ब्रह्मा कुमारी दूबे, रुक्मणी देवी, हुक्म देवी गुप्ता, लीलावती देवी और बंग महिला जैसी लेखिकाएँ हैं।

इन महिला रचनाकारों में से 'एक अज्ञात हिन्दू महिला' और 'बंग महिला' ही ऐसी रचनाकार हैं जिनकी रचनाएँ क्रमशः 'सीमान्तनी उपदेश' और हिन्दी साहित्य की पहली कहानी के रूप में 'दुलाईवाली' मुख्य रूप से अपनी पहचान बनाने में सफल हो पाई हैं। इनके अलावा कोई भी महिला रचनाकार ऐसी नहीं हैं जो हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा पाई हों। हालाँकि सरस्वती गुप्ता का उपन्यास 'राजकुमार' (1898), साध्वी सती पति प्राण अबला का उपन्यास 'सुहासिनी' (1890), प्रियंवदा देवी का 'लक्ष्मी', हेमंत कुमारी चौधरी का 'आदर्शमाता' और यशोदा देवी का 'वीर पत्नी' इसी युग में छपे लेकिन इन्हें उतनी पहचान नहीं मिल पाई जितनी मिलनी चाहिए थी। इन सभी उपन्यासों के केंद्र में स्त्री की गरिमा, मान—मर्यादा और अस्मिता के प्रश्न हैं। इनमें वे प्रश्न भी हैं जो तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलनों द्वारा उठाए जा रहे थे। इन सभी प्रश्नों के होते

हुए भी इन कृतियों का हिंदी साहित्य में नामों—निशान न मिलना भारतेन्दु कालीन स्त्रियों के प्रति पुरुष की मानसिकता को दर्शाता है। ‘सीमान्तनी उपदेश’ देवनागरी लिपि में सबसे पहले 01 फरवरी 1882 को छापी गई थी। इस पुस्तक की लेखिका का नाम अज्ञात है। इसे मुंशी कन्हैया लाल अलखधारी ने प्रकाशित कराया था। लेखिका ने अपना नाम जान बूझ कर कर छिपाया था। संभवतः इसी कारण इस पुस्तक की लेखिका ‘एक अज्ञात हिन्दू महिला’ के नाम से जानी जाती है। इस पुस्तक का सम्पादन करते हुए डॉ. धर्मवीर ने कहा है कि— “सीमान्तनी उपदेश” से पता चलता है कि यह पुस्तक पहली बार 01 फरवरी, 1882 को मुंशी कन्हैया लाल अलखधारी ने लुधियाने से छापी थी।” सीमान्तनी उपदेश अपने आप में अनूठी पुस्तक है। लेखिका ने तद्युगीन समाज का गहन अध्ययन करते हुए वैचारिक स्तर पर समाज—दर्शन का बड़ा गंभीर चिंतन किया है। वे उस समय की अन्य महिला रचनाकारों से कई मामलों में अलग दिखती हैं। जहाँ अन्य महिला रचनाकार तत्कालीन पुरुष समाज की हाँ में हाँ मिलाती हुई चलती हैं, वहीं इस लेखिका ने क्रांतिकारी रुख अखित्यार किया है। ‘जवाब एक औरत का’ में लिखती हैं— “जब परमेश्वर ने इनको पैदा किया तो सब इन्द्रियां मर्दों के बराबर दीं। यह कुछ बात नहीं कि खाविंद मर जाये तो सब इन्द्रियां अपना असर छोड़ दें। जब तक देह में दम है ये जरूर वक्त पर अपना असर करेंगी। ऐसा कोई दुनियां में पैदा नहीं हुआ जिसने इनके फैला को रोका हो। बड़े—बड़े महात्माओं की इन्द्रियां चलायमान हो गई हैं फिर औरत क्या चीज है जो रोक सके।”

‘एक अज्ञात हिन्दू महिला’ की रचनाओं में जैसा तेवर देखने को मिलता है, वैसा इस युग की अन्य लेखिकाओं की रचनाओं में नहीं है

यहाँ तक कि बंग महिला की रचनाओं में भी नहीं। यह अलग बात है कि बंग महिला हिंदी साहित्य में ‘एक अज्ञात हिन्दू महिला’ से कहीं ज्यादा प्रसिद्ध रहीं। लेकिन इन दोनों महिला लेखिकाओं की रचना—दृष्टि और चिंतन में जमीन—आसमान का अंतर है। उदाहरणार्थ हम रामचंद्र शुक्ल द्वारा सम्पादित पुस्तक ‘कुसुम संग्रह’ में बंग महिला का ‘स्त्रियों की शिक्षा’ नामक लेख में देख सकते हैं— “यदि लड़कियों को और कुछ नहीं तो थोड़ी—सी मातृ भाषा की शिक्षा मिल जाया करे तो एक पत्र लिखने के लिए उनको दूसरों का मुँह न ताकना पड़े।” बंग महिला के इस वक्तव्य से ऐसा प्रतीत होता है जैसे वो पुरुष समाज और प्रशासन से झोली फैलाकर स्त्री—शिक्षा के लिए भीख माँग रही हैं। जबकि ‘सीमान्तनी उपदेश’ की लेखिका, पुरुष, स्त्री, और प्रशासन सबके लिए आक्रामक रुख अखित्यार करती हैं। ‘पतिव्रता धर्म’ में वे लिखती हैं— “प्रीत समान की समान से होती है। इसका तो बेवकूफ को भी तजुरबा होगा। देखो, बालक कभी बूढ़े से खुश नहीं रहता हमेशा बालकों में ही खुशी से खेलता है। जवान कभी बूढ़ी स्त्री से राजी नहीं रहेगा। जवान स्त्री कभी बूढ़े से खुश न होगी। बस, यह धर्म इस वक्त के वास्ते नहीं है। आजकल की स्त्रियों को विद्या से महरूम रख, जेलखाने में डाल, तिस पर शक कर, विधवाओं की दूसरी शादी न कर, आप दस—दस शादियाँ करते हैं। क्या ये बेइंसाफी नहीं इनको इस धर्म की राह बताना? क्या जुल्म नहीं अंधे को कुएं में धकेल देना? क्या अंधे के बराबर इनकी हालत नहीं है?”

ऊपर किये गए दोनों महिला लेखिकाओं की रचना—दृष्टि की तुलनात्मक विश्लेषण में मेरा कहीं से भी यह आशय नहीं है कि ‘बंग महिला’ का योगदान कम है, दरअसल यह केवल शालीनता और आक्रामकता का अंतर है।

इस सम्बन्ध संबंध से स्पष्ट है कि बुनियादी तौर पर वे स्त्री सम्बन्धी परम्परागत दृष्टिकोण की समर्थक थीं।” यही दृष्टिकोण ‘एक अज्ञात हिन्दू महिला’ से ‘बंग महिला’ को अलग रखता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दोनों की पारिवारिक पृष्ठभूमि अलग—अलग थी साथ ही समय काल में भी लगभग दो—तीन दशक का अन्तराल है। जहाँ ‘बंग महिला’ का परिवार शिक्षित और आर्थिक रूप से काफी संपन्न था, इसके अलावा वे चार भाइयों के बीच में अकेली बहन थीं, जिससे आजीवन उन्हें प्यार और दुलार मिलता रहा, वहीं ‘एक अज्ञात हिन्दू महिला’ के बारे में अभी तक सब कुछ अज्ञात ही है सिवाय इसके कि वह ‘बाल—विधवा’ थीं। अब जिस लेखिका को अपनी पहचान तक छिपाना पड़ा हो, समाज के प्रति उसके अनुभव का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यहीं पर ‘भोग हुआ यथार्थ’ प्रासंगिक हो उठता है। भोग हुआ यथार्थ समकालीन विमर्शों यथा ‘स्त्री विमर्श’, ‘दलित विमर्श’, ‘आदिवासी विमर्श’ इत्यादि का केन्द्रीय बिंदु है।

“उपेक्षा, अज्ञातवास एवं दमन की मार इतनी गहरी होती है कि स्त्री अपनी पहचान, अधिकार और निजी सत्ता ही भूल गई या भुला दी गई। सामाजिक, साहित्यिक इतिहास से पुंसवादी इतिहास दृष्टि ने स्त्री को लगभग खदेड़ दिया। यही वजह है कि इतिहास ग्रंथों में स्त्री की सृजनात्मक एवं संघर्षशील इमेज का उल्लेख तक नहीं मिलता।” पुंसवादी समाज व्यवस्था भारतीय समाज का एक ऐसा कोड़ है जो प्राचीन काल से लेकर अभी तक पुरुष मानस के अतल गहराई में जड़ होकर बैठा हुआ है। यही जड़ हुई पुरुष मानसिकता, स्त्री को कभी भी अपने समकक्ष आने का अवसर उपलब्ध नहीं कराती। अगर कभी कुछ किया तो उन्हें देवी बना डाला। इसके पीछे भी उनका

अपना निजी स्वार्थ ही जुड़ा था क्योंकि देवी की मर्यादा होती है और मर्यादा की सीमा भी। बाकी स्त्री ‘दासी’ रूप में अपना जीवन जी ही रही थी। दासी, जिसे गुलामी का पर्याय समझा जा सकता है।

भारतेन्दुकालीन महिला रचनाकारों को यदि पुरुषों का सही सहयोग मिला होता तो हिंदी साहित्य की रूप—रेखा अलग होती, क्योंकि प्रत्येक वर्ग का अपना अलग अनुभव होता है। खैर, जिस प्रकार से भक्ति आन्दोलन का प्रारंभ महिला रचनाकारों ने किया उसी तरह भारतेन्दु युग में उपन्यास विधा के विकास में स्त्रियों की निर्णायक भूमिका थी। ऊपर हमने कई महिला उपन्यासकारों का उल्लेख किया है। उनके उपन्यासों में प्राचीन मर्यादाओं और रिवाजों का ध्यान रखते हुए स्त्री अस्मिता को उभारने का प्रयास दिखाई देता है। लगभग सभी उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। मसलन संवाद की बजाय वर्णन पर ज्यादा जोर है साथ ही इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता ने भी इनका पीछा नहीं छोड़ा है। यथार्थवादी दृष्टिकोण इन उपन्यासों में देखने को तो नहीं मिलता है लेकिन विचारों की अभिव्यक्ति भरपूर हुई है।

यहाँ पर महत्वपूर्ण यह नहीं है कि इनके उपन्यासों में ‘औपन्यासिकता’ है या नहीं महत्वपूर्ण यह है कि उपन्यास के उद्भव काल में ही स्त्रियों ने ‘उपन्यास’ लिखने का साहस किया, जबकि वे समाज की मुख्यधारा में नहीं गिनी जाती थीं। फिर भी इन “उपन्यासों में पति—पत्नी संबंधों की सार्थकता, संयुक्त परिवार की सार्थकता, स्त्री—शिक्षा की अहमियत, स्त्री—साहस, स्त्रियों के आपसी सौहार्दपूर्ण संबंधों, स्त्रियों के त्याग, दान—पुण्य, प्रकृति प्रेम, बाल विवाह निषेध, पुरुषों की अधीनता का विरोध, पाश्चात्य जीवन—शैली और भारतीय जीवन—शैली के अंतर्विरोधों, भारतीय जीवन—शैली की सार्थकता एवं श्रेष्ठता, मद्यपान

निशेध, दुरवस्था में ईश्वर की प्रार्थना, स्त्री की लोकोपकारिणी छवि, सेविका, पति परायण, कर्तव्यनिष्ठा आदि इमेजों का रूपायन मिलता है।"

'साध्वी सती पति प्राणा अबला' का उपन्यास 'सुहासिनी' का प्रकाशन सन 1890 में हुआ था। उपन्यास की नायिका 'सुहासिनी' है, जिसके माता और पिता नहीं हैं। वह विवाह के बाद गरीबी का भयानक दंश झेलती है। उसे अपना शहर तक छोड़ना पड़ता है। अकालग्रस्त अवस्था में भिक्षा मांगती है। अंत में एक ब्राह्मण के यहाँ महाराजिन का कार्य करती है। इस उपन्यास में भूख और अकाल के खिलाफ संघर्ष का जीवंत चित्र उभरकर सामने आता है।

सरस्वती गुप्ता का उपन्यास 'राजकुमार' जो 1898 में छपा। इस उपन्यास की नायिका 'ज्ञानलता' है, जो एक शिल्पी की बेटी है। बुद्धि और विवेक की तीव्रता के बलबूते पर उसकी एक राजकुमार के साथ शादी हो जाती है। भविष्य में यही ज्ञान और विवेक राजकुमार के मन में ज्ञानलता के प्रति ईर्ष्या पैदा कर देता है, जिससे वह ज्ञान लता को त्याग देता है। ज्ञान लता के दो बेटे हैं। बेटों के बड़े होने पर वह राजकुमार से उनके जरिये अपने अपमान का बदला लेती है। अंत में राजकुमार उससे माफी माँगता है। इस उपन्यास में मानवता और समाज—सुधार के लिए उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

यशोदा देवी के उपन्यास 'वीर पत्नी' की नायिका 'संयोगिता' है। दरअसल इसकी कथा पृथ्वीराज चौहान, जयचंद और संयोगिता की ही है। किन्तु इस उपन्यास में कई परिवर्तन किये गए हैं, जैसे— पृथ्वीराज के मित्र चंदबरदाई तथा कैमास तक का जिक्र उपन्यास में कहीं भी देखने को नहीं मिलता। इसके अलावा यह दिखाया गया है कि पृथ्वीराज की मृत्यु हो जाती

है। जिसके उपरांत संयोगिता ने मुहम्मद गोरी और जयचंद की सेनाओं को हराया। वर्णनात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास पत्नी के रूप में एक स्त्री की वीरता और साहस की कहानी कहता है। यह बात अपने आप में पुंसवादी समाज में स्त्री के महत्व को सिद्ध करने जैसा है।

इस युग की अनेक अज्ञात व अल्पज्ञात महिला रचनाकारों ने पुंसवादी समाज की चुनौती को स्वीकार कर रचनाधर्मिता में लगी रही और अपनी अभिव्यक्ति को शब्दों में पिरोया। इसलिए पुरुष उपन्यासकारों और महिला उपन्यासकारों की दृष्टि में काफी अंतर मिलता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी इस बारे में लिखते हैं। "आरम्भ के स्त्री उपन्यासों में स्त्री की वास्तविक दशा के यथातथ्य वर्जन पर जोर है। जबकि अनेक पुरुष उपन्यासकारों ने 'रोमांस' को मुख्य विशय बनाया था। यथातथ्य वर्णन एवं इतिवृतात्मक शैली के कारण स्त्री की समस्याओं की तरफ ध्यान खींचना मुख्य लक्ष्य था। इस तरह ये उपन्यास समाज सुधार आंदोलनों से अपना रिश्ता बना रहे थे। स्त्रियों में यह दृष्टिकोण लोकप्रिय था कि समाज सुधार संघर्षों के जरिये ही आधुनिक चेतना का निर्माण संभव है। इसे ही राजनीतिक परिवर्तन की कड़ी माना।"

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का यह युग कई मायनों में आधुनिकता लिए हुए इतिहास के पन्नों में दर्ज है। चाहें वह गद्य विधाओं के उद्भव काल के रूप में हो, नवजागरण हो, या 1857 की क्रांति होय सभी में कुछ—न—कुछ नयापन जरूर दिखता है। अभी तक हुए नये शोध और खोजों के माध्यम से हिंदी साहित्य के इस युग में जितनी महिला रचनाकारों और उनकी रचनाओं का पता चला है। उनमें से कुछेक को छोड़ कर अधिकतर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों की ही महिलाएं हैं। उदाहरण स्वरूप हम

'बंग महिला' और 'एक अज्ञात हिन्दू महिला' का नाम ले सकते हैं। बंग महिला जहाँ बंगाली परिवार से हैं वहीं डॉ. धर्मवीर ने एक अज्ञात हिन्दू महिला का सम्बन्ध पंजाब से जोड़ कर देखा है। "इसी पंजाब की धरती पर 'सीमंतनी उपदेश' की इस अज्ञात लेखिका ने उन्नीसवीं शताब्दी में काम किया था"।

**निष्कर्षतः** यही कहा जा सकता है कि भारतेंदु युग में तमाम ऐसी महिला रचनाकार थीं, जो लगातार अपने विचारों की अभिव्यक्ति साहित्य लेखन के माध्यम से कर रही थीं। अंग्रेजी शासन में उन पर राजनीतिक दबाव तो था ही सामाजिक और पारिवारिक दबाव भी कम न था। सामाजिक और पारिवारिक दबाव के कारण ही उनकी रचनाशीलता प्रकाश में न आ सकी अतः वे अपने भोगे हुए यथार्थ को बड़ी ईमानदारी से दर्ज करती हुई दिखती हैं, क्योंकि वे जानती थीं कि उनका लिखा हुआ कहीं प्रकाशित नहीं होने वाला। यही कारण है कि पुरुषों की अपेक्षा महिला रचनाकारों की अभिव्यक्ति ज्यादा प्रखर दिखाई देती है। जाहिर है यदि महिला रचनाकारों का विपुल साहित्य यदि प्रकाश में आया तो आज के स्त्री-विमर्श को एक नई और मजबूत दिशा मिल सकती है। अतः भारतीय दृष्टि से स्त्री विमर्श के उद्भव को तलाश कर स्त्री के योगदान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य देखने की आवश्यकता है।

"अब खोल आँखें अपनी दुनिया को देखो तुम, लाखों तुम्हारी हजारों में पुस्तक है छप चुकीं।"

• • • • • • •

### **संदर्भ :**

1. संपा. डॉ. धर्मवीर : सीमान्तनी उपदेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण—2008, पृ. 18
2. वही, पृ. 71
3. भवदेव पाण्डेय : बंग महिला : नारी मुक्ति का संघर्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण—2008, पृ. 18
4. संपा. डॉ. धर्मवीर : सीमान्तनी उपदेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण—2008, पृ. 18
5. वीर तलवार : रस्साकशी, सारांश प्रकाशन दिल्ली—2012, पृ. 218
6. जगदीश्वर चतुर्वेदी : स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली— 2011, पृ. 118
7. वही, पृ. 120
8. वही, पृ. 120
9. संपा. डॉ. धर्मवीर : सीमान्तनी उपदेश, वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली द्वितीय संस्करण—2008, पृ. 18
10. वही, पृ. 46

## कविता

### सिन्हॉल ऑफ नॉलेज

जय भारत महान,  
जय संविधान।  
पावन भारत भूमि,  
में लिया जन्म।  
एक अजगुत,  
इंसान।  
उनकी है,  
ये,  
दास्ताँ।  
जाति का पहचान नहीं था,  
समाज में जिन्हें स्थान नहीं था।  
पॉकेट में थी नहीं अद्धनी,  
मिलता नहीं था उन्हें पीने पानी।  
छुआ—छुत की भरी प्रथा में  
कमरा के बाहर पढ़ते थे।  
नहीं किसी से ईर्ष्या करते  
मन मार के पढ़ा करते थे।  
निर्भीक होकर हर ज्ञान का,  
सुनना सीखा, जानना सीखा।  
जीवन में धारण करना सीखा!  
सहते रहना, पढ़ते रहना,  
हर कदम पे आगे बढ़ते रहना,  
जीवन का उद्देश्य था जिनका  
सोच में जिनकी थी वैज्ञानिकता।  
हर जवाब में थी आधुनिकता।  
मिला सहयोग सहयोग साहू महाराज का  
छात्र बना अमेरिका लंदन का  
जिनकी प्रतिभा को पहचाना,  
कोलंबिया यूनिवर्सिटी ने  
मिला उपाधि उनको जहाँ  
सिंहॉल ऑफ नॉलेज का  
बेशुमार थी डिग्री जिनकी  
श्रेष्ठतम थे मानवतावादी  
थी चौदहवीं संतान भीमा का

कहते लोग हैं जिन्हें  
निर्माता आधुनिक भारत का  
किया जिसने निर्माण संविधान  
भारत को दिया समतावादी संविधान  
रिजर्ब बैंक की स्थापना में  
रहा जिनका भरपूर योगदान।  
तब हाल बदला औद्योगिकरण का।  
हर मानव वंचित समाज का  
पढ़ने का अधिकार दिया।  
सीख दिया सम्मान से जीना  
समता, बन्धुता और स्वतंत्रता का  
ज्ञान दिया सभी जनों का।  
नारी का अधिकार दिया  
हिन्दू कोड बिल का नाम दिया।  
हुआ पास नहीं संसद में ज्याँ बिल  
त्याग दिया सांसद पद भार  
निडर रहकर लिडर बने  
हजार, लाख करोड़ों के बीच,  
मुश्किल राह पर अडिग रहें।  
उरे नहीं किसी के आगे,  
झूके नहीं किसी के पास।  
जीवन के संघर्षरत में  
किया न्यौछावर अपना प्राण।  
सभी ज्ञान से थे सम्पन्न  
नाम था उनका,  
डॉ. भीमराव अंबेडकर  
ऐसे महापुरुष के आगे  
सत्—सत् नमन हम करते हैं,  
बाबा साहब उन्हें हम कहते हैं॥

— नारायण दास

विद्यासागर विश्वविद्याल, प. बंगाल

### क्यों बदल गए

न जाने तुम  
अचानक यूँ ही  
क्यों बदल गए ?  
एक तुम ही तो थे  
जिसमें मैं दुनिया की  
सारी अच्छाइयाँ महसूस करती थी  
दूर रहते हुए भी  
महसूस करती थी अपनापन  
फिर आज अचानक तुम  
इतने पराए क्यों हो गए ?  
तुम्हारा नया चेहरा तो  
मेरे लिए अजनबी ही था  
जिसे देख कर ठगी ही रह गई !  
जिन आंखों में सदा  
ममता ही दिखती थी  
आज वही आंखें  
भयभीत करती हैं !  
तुम्हारे बिना कहे ही मैंने  
तुम्हारी भावनाओं को महसूस किया  
उसे मान दिया  
फिर तुम क्यों मेरे  
अव्यक्त प्रेम और श्रद्धा को  
समझ नहीं पाए ?  
क्या तुम्हारा प्रेम और अपनापन  
औरों की ही तरह  
सिर्फ स्वार्थ से ही लिपटा था ?  
जिसे मैं अनजाने ही  
निश्चल प्रेम समझ बैठी ।

— पिंकी सिंह

### नीति सफर में साथ—साथ चल तू

सफर में साथ—साथ चल तू  
नजर के पास—पास रह तू  
बहारों की बारिश है  
प्यार की खाहिश है  
जैसे लहरों पे घिरकती है कश्ती  
दिल के दरिया में वैसे मचल तू

सफर में साथ—साथ चल तू  
नजर के पास—पास रह तू  
नजारों की ये हलचल है  
हवाओं की सनसन है  
छनकती झील में ये झांझर सी  
जैसे नीर में खिले कमल तू

चलो कोई आशियाना ढूँढे  
आसमां में सामियाना ताने  
न जुल्फों को ऐसे बहकने दो  
मुझको भी कुछ संवरने दो  
चमकते रहेंगे हम साहिल की रेत सी  
जैसे किसी शायर की हो गजल तू

पहला सफर यूँ सुहाना है  
भंवर के पार हमें चलते जाना है  
दिल चुराऊं तो मुझको चुराने दो  
धड़कता है दिल तो धड़क जाने दो  
झूमते रहेंगे हम लहरों की वेग सी  
मन के आंगन में ऐसे ही मचल तू  
सफर में साथ—साथ चल तू  
नजर के पास—पास रह तू

— अनवर हुसैन

## स्पोर्ट किसानों के पास पहुँचानी होगी पटसन की उन्नत किस्में : डॉ. गौरांग कर



बैरकपुर, 5 मार्च : सेंट्रल रिसर्च फार जूट एंड एलायड फाइबर (क्रिजैफ) के निदेशक डॉ. गौरांग कर ने कहा है कि किसानों के पास पटसन की कम से कम 4-5 उन्नत किस्में अवश्य पहुँचानी होगी। किसान जानकारी के अभाव में अक्सर एक ही किस्म के पटसन की खेती करते हैं। किसानों को क्राइजैफ द्वारा विकसित सोना बीज के बारे में जानकारी देनी होगी। साथ ही पटसन की विभिन्न उन्नत किस्मों का इस्तेमाल कर उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरित करना होगा। पटसन का उत्पादन बढ़ाने में नई तकनीक की भी मदद लेनी होगी। डॉ. कर ने शनिवार को पटसन की खेती में आधुनिक कृषिजनित अभ्यास विषय पर आयोजित सम्मेलन में यह बातें कही। आईसीआर-क्राइजैफ, नेशनल जूट बोर्ड और भारतीय जूट निगम की ओर से संयुक्त रूप से जूट-आईकेयर योजना के तहत सम्मेलन का आयोजन किया था। सम्मेलन में पटसन से संबंधित सभी एजेसिंया और संबंधित विभागों के वरिष्ठ सरकारी अधिकारी उपस्थित थे। सम्मेलन में 100 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। डॉ. कर ने कहा कि उन्नत रेसा तैयार करने के लिए क्रिजैफ ने विज्ञान अधारित सड़न पद्धति विकसित की है। किसानों को पटसन की खेती में इस आधुनिक सड़न पद्धति से परिचित कराना होगा। इसके अतिरिक्त भी उत्पादन बढ़ाने के लिए कई वैज्ञानिक तरीके इजाद किए गए हैं। किसान इस शोध संस्थान द्वारा विकसित तकनीक का इस्तेमाल कर लाभान्वित हो सकते हैं।

डॉ. डीबी शक्यवर, निदेशक एनआईएनएफइटी ने कहा कि जूट-आईकेयर पटसन विकास से संबंधित एक सफल योजना है। इस योजना को अधिकांश किसानों तक पहुँचाने में सफलता मिली है। कमलेश कुमार, महाप्रबंधक, नाबार्ड ने कहा कि आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल कर पटसन का उत्पादन बढ़ाना संभव है। नाबार्ड जूट के रेसे का विपणन और किसानों की आय बढ़ाने में वित्तीय सहयोग करने के लिए तत्पर रहता है। सम्मेलन में जूट आयुक्त एमसी चक्रवर्ती, एके जोली, एमडी, जेसीआई और असम की अतिरिक्त सचिव एसथर कथार(पी एंड आरडी) समेत अन्य वक्ताओं ने भी सम्मेलन में अपने विचार व्यक्त किए।

## तीन दिवसीय इंडियन फिशरीज आउटलुक 2022 (IFO 2022) संपन्न



बैरकपुर, 24 मार्च: तीन दिवसीय इंडियन फिशरीज आउटलुक 2022 भाकृअनुप—केंद्रीय अंतर्स्थलीय मात्रियकी अनुसंधान संस्थान (सिफरी), बैरकपुर, कोलकाता में गुरुवार को संपन्न हुआ। पहले दिन सम्मेलन का उद्घाटन उद्घाटन राज्य के सुंदरवन विकास मामलों के मंत्री श्री बंकिम चंद्र हाजरा ने किया। तीन दिवसीय सम्मेलन में किसानों, उद्यमियों और जलीय कृषि उद्योगों से संबद्ध हितधारकों के लिए संस्थान द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन किया गया। जलीय कृषि उद्योगों से जुड़े किसानों और मत्स्य क्षेत्र के उद्यमियों ने प्रदर्शनी से व्यवहारिक ज्ञान अर्जित किया।

सम्मेलन में 22 मार्च 2022 को दो विचार—मंथन सत्र आयोजित किए गए थे। पहला सत्र उभरते परिदृश्य में भारतीय जलीय कृषि क्षेत्र में चुनौतियों और अवसरों तथा दूसरा विचार—मंथन सत्र घरेलू स्तर पर विपणन, मछली के प्रसंस्करण, खपत और वितरण में चुनौतियाँ व अवसर पर आधारित था। बदलते परिदृश्य में भारतीय मात्रियकी क्षेत्र में चुनौतियों पर भी विस्तार से चर्चा हुई।

सम्मेलन के हिस्से के रूप में 23 मार्च 2022 को आयोजित भारत में जलीय कृषि क्षेत्र की नीतिगत अनिवार्यताओं, अनुसंधान आवश्यकताओं और जन श्रम आवश्यकताओं पर उद्योग—संस्थान समागम पर बैठक हुई। डॉ विक्टर सुरेश, तकनीकी निदेशक(ग्रोवेल फीड्स), श्री रवि कुमार येलंकी, एमडी(वैशाखी बायो—मरीन प्राइवेट लिमिटेड), श्री एस मोहन्ती, जीएम (अवंती फीड्स लिमिटेड), श्री एस चंद्रशेखर, यूएस सोया एक्सपोर्ट कार्जसिल, डॉ. मनोज एम. शर्मा, एमडी, (मयंक एक्वा फार्मस) ने मत्स्य पालन उद्योग का प्रतिनिधित्व किया। इस बैठक के दौरान अनुसंधान संस्थान और उद्योग के बीच संबंधों पर चर्चा की गई।

हिल्सा मछली संवाद पर एक उपग्रह संगोष्ठी—बंगाल की खाड़ी के परिप्रेक्ष्य में आयोजित की गई जहां भारत, बांग्लादेश और स्थानांतर के वक्ताओं ने बंगाल की खाड़ी क्षेत्र में हिल्सा मत्स्य पालन के संरक्षण और उसकी कायाकल्प के बारे में अपने बहुमूल्य विचार रखे। सम्मेलन के दौरान सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं का चयन करने के लिए आईएफएसआई स्वर्ण पदक पुरस्कार प्रदान व युवा मत्स्य पालन प्रतिभा खोज का भी आयोजन किया गया।

समापन सत्र 24 मार्च 2022 को आयोजित किया गया था जिसमें डॉ. डब्ल्यू.एस. लाकड़ा, (पूर्व कुलपति, सीआईएफई, मुंबई) बतौर मुख्य अतिथि समारोह को संबोधित किया। तीन दिवसीय इस सम्मेलन में 500 से अधिक शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, छात्रों और उद्योगों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और विचार—विमर्श किया। पश्चिम बंगाल, गुजरात और अन्य राज्यों के 200 किसानों ने भी इस आयोजन में भागीदारी की। सम्मेलन ने विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं, सलाहकारों, छात्रों व अन्य हितधारकों के बीच बातचीत किलिए एक अंतर—अनुशासनात्मक मंच प्रदान किया जिसमें सर्वोत्तम मत्स्य पालन तथा जलीय कृषि क्षेत्र में सतत विकास व लक्ष्य प्राप्त करने में आम सहमति बनाई गई।

**प्रस्तुति : मनोज कुमार**